चीन की सांस्कृतिक क्रांति

सांस्कृतिक क्रान्ति के सम्बन्ध में सारी दुनिया में भिन्न-भिन्न प्रकार की गलतफहमी

चीन की वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रांति को आधार बनाकर संसार की तमाम पत्र-पत्रिकाओं में काफी मनगढ़न्त निष्कर्ष (Speculation) लगाये जा रहे हैं एवं सांस्कृतिक क्रांति से संबद्ध विभिन्न समाचारों को जानबूझकर तथा नापाक इरादे से तोड़मरोड़ कर प्रचारित किया जा रहा है। लेकिन सबसे गम्भीर बात तो यह है कि मार्क्सवाद—लेनिनवाद के सिद्धान्त से प्रेरित विभिन्न देशों के कम्युनिष्ट कार्यकर्त्ताओं में भी चीन की इस सांस्कृतिक क्रांति के बारे में नाना प्रकार के भ्रम व्याप्त हैं। चीन का नेतृत्त्व जिन्हें पार्टी-विरोधी कार्य करने वाला समझ रहा है उन्हें पार्टी के अन्दरूनी संघर्ष (Inner Party Struggle) की नीति अपनाते हुए निकाल बाहर न करके सारे देश के जनसमूह को खुलेआम द्वन्द्व में शामिल करते हुए जो यह महाकांड वहां रचा जा रहा है इसे सोवियत कम्युनिष्ट पार्टी सहित कुछ दूसरे कम्युनिष्ट लोग भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद की मूल नीति के विरुद्ध मान रहे हैं। इसके अलावे सोवियत कम्युनिष्ट पार्टी एवं उसके कुछ समर्थक इस तरह की राय भी व्यक्त कर चुके हैं कि चीन में कम्युनिष्ट पार्टी को खतम करके अपना नेतृत्व तथा निरंकुश आधिपत्य मजबूत करने के लिए ही माओ-त्से-तुंग की अगुआई में यह सांस्कृतिक क्रांति संचालित की जा रही है। इसके साथ ही रेडगार्ड तथा सांस्कृतिक क्रांति के कार्य-

कर्त्ताओं की तथाकथित ज्यादती (excess) के बारे में भी बुजुआ अखबारों द्वारा तरह-तरह के अफवाहों को फैलाया जा रहा है। स्वभावतः कम्युनिष्ट कार्यकर्त्ताओं के मन में इसके संबंध में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न हैं।

फिर पूंजीवादी देशों में—'लिउ साव ची तथा माओ-त्से-तुंग के बीच नेतृत्त्व पर आधिपत्य के लिये संघर्ष'—का जो प्रचार-अभियान चल रहा है तथा 'चीन में माओ-त्से-तुंग को लेकर इस समय गुरुवादी (authoritarianism) व्यक्तिपूजा हो रही है'—जैसे चिन्तनों से भी बहुत सारे कम्युनिष्ट कार्यकर्त्ता प्रभावित हो रहे हैं। बुजुआ पत्र-पत्रिकाओं में चाहे जो भी प्रचार किया जाता हो, कम्युनिष्ट कार्यकर्त्ताओं को यह समझना होगा कि इतने सीधे सादे तरीके से विचार कर चीन की वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रांति को नहीं समझा जा सकेगा। मैं समझता हूँ कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही इस सांस्कृतिक क्रांति का एक वैज्ञानिक आधार है एवं चीन जिस तरह से इस सांस्कृतिक क्रांति का संचालन कर रहा है वह महान (magnificent) है। सारे संसार में, जहां कहीं भी, कम्युनिष्ट संघर्ष में संलग्न हैं उनके लिये यह सीखने का विषय है। हाँ, इसमें कुछ भूल या कमजोरी हो सकती है किन्तु उसका स्वरूप उपरोक्त किस्म का नहीं हो सकता। सारी घटना की पृष्ठभूमि में ही वे विचारनीय या आलोचित हो सकते हैं।

वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रान्ति : सांस्कृतिक आंदोलन का एक विकसित चरम रूप मात्र

चीन की कम्युनिष्ट पार्टी को क्रांति के बाद सांस्कृतिक क्षेत्र में समाज के अन्दर सभी स्तरों पर जो संघर्ष संचालित करना पड़ा उसी की परिणति (culmination) मात्र वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रांति है। संस्कृति के क्षेत्र में चीन की कम्युनिष्ट पार्टी को क्रांति के पहले भी ऐसा

आन्दोलन करना पड़ा है। किसी भी क्रांति के पहले सभी देशों में, सभी पार्टियों के लिये यह एक अनिवार्य कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य को पूरा किये बिना ही क्रांति कर लेना किसी भी क्रांतिकारी पार्टी के लिये संभव नहीं है। चीन की कम्युनिष्ट पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की दसवीं प्लेनारी (अधिवेशन) में कॉमरेड माओ-त्से-तुंग ने कहा था, "To overthrow political power it is always necessary first of all to create public opinion, to do work in the ideological sphere" अर्थात् किसी राजनैतिक शक्ति को उखाड़ने के लिये सबसे पहले आवश्यक है कि इसके लिये जनमत का निर्माण किया जाय, विचारों के क्षेत्र में कार्य किया जाय। यहीं उन्होंने सांस्कृतिक क्रांति की बात कही। न सिर्फ क्रांतिकारी पार्टियों के लिये बल्कि प्रति क्रांतिवादी वर्ग के लिये भी यह सत्य है। जो कोई भी जन-उभाड़ का संघटन करते हुए विरोधी तत्त्व को सत्ता से उखाड़ना चाहेंगे उन्हीं को जन-उभाड़ पैदा करने हेतु अपने विचार और सिद्धान्त के अनुकूल जनमत-संगठन के लिये संबद्ध विचार क्षेत्र में कार्य करना पड़ेगा।

क्रांति के पहले की अवधि में क्रांति के हित में सांस्कृतिक क्षेत्र में चलाया जाने वाला यह संघर्ष क्रांति के बाद भी उसकी रक्षा करने, उसे दृढ़ करने तथा आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक होता है। न सिर्फ राजसत्ता पर आधिपत्य स्थापित करना बल्कि उसको दृढ़ बनाना भी क्रांति की मूल समस्या होती है—'Fundamental question of very revolution is not only to capture power but to onsolidate it.' राजसत्ता को दृढ़ करने की यह बात सिर्फ राजनैतिक तथा आर्थिक पहलुओं के बारे में ही नहीं कही गई है—इसमें सांस्कृतिक पहलू की भी बात है। 'सांस्कृतिक क्रांति जारी रहेगी'—Cultural revolution will continue—इन शब्दों में मार्क्स ने यही समझाने की कोशिश की है।

चीन में भी क्रांति के बाद भी सांस्कृतिक क्षेत्र में यह आन्दोलन चल ही रहा था। चीन में क्रांति के बाद वाले समय में पार्टी कार्यकर्त्ताओं के चरित्र तथा उनके प्रचार के तरीके के संबंध में तथा उनमें बुर्जुआ एवं प्रतिक्रांतिवादी चिन्तन के अनुप्रवेश (infiltration) के विरुद्ध अनेकों लेख प्रकाशित हुए हैं। यह सांस्कृतिक क्रांति का ही अंग था। लेकिन चीन में इस समय जो आंदोलन चल रहा है वह सांस्कृतिक क्रांति का एक विशेष स्तर है।--जो एक विशेष अवसर पर अपने इस रूप में प्रकट हुआ है। हर-हमेशा क्रांति इस रूप में प्रकट नहीं होती। खास-खास घटनाओं के संयोग से यदा-कदा ही क्रांति ऐसे रूपों में विकसित हो जाती है। किन्तु यह एक अविराम प्रक्रिया (Continuous process) है। इस समय चीन के बारे में जिस तरह के समाचार उपलब्ध हो रहे हैं उससे मालूम पड़ता है कि निकट भविष्य में ही सांस्कृतिक क्रांति का यह स्तर पूरा हो जायगा। इसके बाद वहां पुनः एक तरह का संतुलन स्थापित हो जायगा और उस समय वर्त्तमान उभाड़ का वहां कोई पता नहीं लग सकेगा। इसका तात्पर्य क्या है? वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रांति के द्वारा वहां कुछ परिवर्त्तन सम्पन्न हुए हैं। हमारा अनुमान है कि इन परिवर्त्तनों के कार्यसिद्ध होने के बाद ही, वर्त्तमान पर्व की समाप्ति पर ही पार्टी वहाँ पार्टी-कांग्रेस का पुनः आह्वान करेगा। वर्त्तमान नेतृत्त्वों तथा अन्य कुछ मसलों पर चन्द फेर-बदल होंगे। वे लोग यह सब करने जा रहे हैं। लेकिन इसके बाद भी सांस्कृतिक क्रांति के बचे-खुचे साधन (instruments) अपना कार्य करते रहेंगे।

सांस्कृतिक आन्दोलन उस समय भी जारी रहेगा। निश्चय ही, उसका वर्त्तमान स्वरूप नहीं रहेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की वर्त्तमान स्थिति में ही चीन ने सांस्कृतिक क्रांति क्यों शुरू किया ?

अब, चीन की सांस्कृतिक क्रांति के बारे में उत्पन्न प्रश्नों पर चर्चा करने के पहले एक बात समझनी चाहिए। वह है—अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय परिस्थिति के ठीक ऐसे ही मौके पर चीन ने इस तरह की एक क्रांति में समस्त देश को क्यों संलग्न कर दिया ?

लगता है उसने कुछ हद तक जानबूझकर स्वेच्छा से ही इस विपत्ति को मोल लिया, जबकि यह कोई साधारण विपत्ति नहीं है बल्कि इससे बहुत खतरनाक नतीजे या संकट भी उत्पन्न हो सकते हैं। फिर देखिये, इस तरह का एक कदम उसने लिया भी तो किस समय में ? सच कहा जाय तो चीन आज अमेरिकी जंगखोरों के हमले को निरन्तर धमकियों के सामने अकेला है एवं ऐसी सम्भावना को भी हम नजर-अन्दाज नहीं कर सकते कि यदि सचमुच ही वैसी विपत्ति कभी आ पड़ी तो शायद, समाजवादी खेमे की कोई मदद चीन को नहीं मिल सकेगी। दूसरी ओर चीन की अपने आर्थिक विकास की समस्या है और उसके सम्मुख उत्पादन-वृद्धि की समस्या भी जबर्दस्त है। ऐसे समय में, जैसा कि कुछ लोगों का कहना है, सांस्कृतिक क्रांति का कार्यक्रम तो चीन इस प्रकार भी चला सकता था कि पहले पार्टीगत विषयों के तौर पर पार्टी अपना सिद्धान्त तय कर लेती अर्थात पार्टी में संघर्ष (inner party struggle) की नीति के अनुसार लोग पहले आपस में फैसला कर लेते और तब पार्टी के एक निर्णय एवं वक्तव्य से जनसाधारण को प्रेरित करते। ऐसा न करके पूरे देश के सभी स्तर के जनसाधारण को, यहाँ तक कि सेना को भी शामिल करते हुए उनलोगों ने एक संघर्ष

प्रारम्भ किया—ऐसा संघर्ष जिसमें उनलोगों ने समालोचना तथा प्रति-समालोचना का एक ऐसा खुला वातावरण पैदा कर दिया जिससे अनेकों जटिलताएँ तथा कठिन विपत्ति पैदा हो सकती हैं। ये सब जानी हुई बातें थीं। यह जानते हुए ही कि इससे देश में बहुत खतरनाक गड़बड़ी पैदा हो सकती है उनलोगों ने इसे शुरू किया। यह तरीका गलत है या सही इसकी चर्चा करने से पहले यह समझने की कोशिश करनी होगी कि इसी समय वह (चान) इतना बड़ा खतरा मोल लेने को क्यों बाध्य हुआ। इस सम्बन्ध में मेरी एक प्रकार की धारणा है। मैं जिस प्रकार समझा हूँ, आपके समक्ष पेश कर रहा हूँ।

सभी प्रतिगामी विचारधारा तथा अवसरवाद को जड़ से मिटाना

पहली बात, चीन में जनता की जनवादी क्रांति हुई है। कहना न होगा कि, जनता की जनवादी क्रांति की राजनीति एवं उसके आधार पर जनवादी क्रांति की आवश्यकता के बारे में जनता की अनुकूल मनो-वृत्ति का गठन करते हुए ही जनता की जनवादी क्रांति सफल हुई है। जनता की जनवादी क्रांति को कामयाब होने के लिए, उसे कार्यरूप देने के लिए एवं सत्ता की बागडोर छीनने के लिए आदर्श तथा संस्कृति के क्षेत्र में उसे जहाँ तक सामंती तथा बुर्जुआ विचारधारा के विरोधी होने की आवश्यकता थी आदर्श के क्षेत्र में वहाँ तक की जरूरतों की पूर्त्ति करके ही जनता की जनवादी क्रान्ति सफल हुई। लेकिन इससे न तो जनता और पार्टी कार्यकर्त्ताओं के सांस्कृतिक मनन सभी गलत खामियों से मुक्त हो सके थे और न पुराने समाज से परम्परागत प्रभाव के रूप में लाये गये नीति, आदर्श तथा संस्कृति के बीज को ही पूरी तरह समाप्त किया जा सकता था। इसके अलावे, जिस वर्ग के सत्ता से उखार कर क्रांति सफल हुई थी वह अपने हाथ से राजसत्ता निकल जाने

से ही सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में भी अपना वर्गीय प्रतिरोध की क्षमता नहीं खो बैठा था। परिणामतः समाज के अन्दर पुरानी व्यवस्था के सांस्कृतिक बीज नये वातावरण में विभिन्न रूप लेकर चाहे जितने भी सूक्ष्म रूप में क्यों न हों सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन के सभी अंगों में रह गया था। यहाँ तक कि पार्टी-सदस्यों के सैद्धान्तिक स्तर की निम्नता से बल पाकर वह पार्टी के विभिन्न कार्य-पद्धति में दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जा रहा था। जैसे-जैसे समाजवाद में शान्तिपूर्ण संक्रमण होता जा रहा है—बाहर से चाहे उसमें जो भी गड़बड़ी नजर आती हो अन्दर में उसका स्वरूप आपेक्षिक तौर पर शान्तिपूर्ण ही है—और चूँकि पार्टी सरकार का संचालन कर रही है, ऐसी स्थिति में, इन सारे कारणों से पार्टी के सदस्यों एवं जनता में एक तरह का अवसरवादी रुझान स्वभावतः बढ़ता ही जा रहा है।

इन सारे कारणों से, बुर्जुआ विचारधारा, आचार-व्यवहार तथा आचरण पार्टी के अन्दर प्रवेश कर रहे हैं और ये सब समाजवाद, क्रान्ति के नारे तथा मार्क्सवाद की सारी पांडित्यपूर्ण बातों की आड़ में ही प्रवेश कर रहे हैं एवं पार्टी में कार्य करते जा रहे हैं। इन विषयों के बारे में नेतृत्व के मन में जो शंका है उस पर अविश्वास करने का हमारे लिये—यदि अन्धतापूर्ण आवेग (bias) नहीं हो—कोई कारण नहीं है। यह स्वाभाविक एवं सम्भव है। हो सकता है कि इसके बारे में कुछ नमक-मिर्च लगाकर या काट-छाँट कर कहा जाता हो, किन्तु ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है। क्रान्ति के हो जाने से ही जो लोग इस तरह की घटना का होना गैर-मुमकिन समझते हैं एवं पार्टी के कार्यकर्त्ताओं को बुर्जुआ-विचारधारा के प्रभाव से मुक्त समझ बैठते हैं वे क्रान्ति की कार्यपद्धति के बारे में बिल्कुल ही अज्ञानी हैं। क्रान्ति से ही किसी भी देश में यह सब नहीं हो जाता। यह झुकाव मौजूद रहता ही है—वहाँ भी इस तरह की त्रुटि है।

चिन्तन तथा संस्कृति के स्तर की निम्नता दूर करनी है

दूसरी बात, जैसा कि रूस के अनुभव से स्पष्ट है, आर्थिक शक्ति, सामरिक तथा तकनिकी क्षेत्रों में समाजवादी व्यवस्था की तेज अग्रगति, समाजवादी निर्माण कार्य के विभिन्न पहलुओं में व्यापक प्रगति के बावजूद यदि इनके साथ ही सामूहिक तौर पर समाज के सांस्कृतिक मनन अर्थात् संस्कृति, दर्शन से लेकर प्रत्येक व्यक्तिगत आचरण तथा आदत का भी उससे सामंजस्य रखते हुए विकास नहीं कराया जाय तो इन दोनों के बीच एक खाई उत्पन्न हो जाती है जिससे चिन्तन के स्तर में गिरावट आ जाती है। और, चिन्तन का स्तर निम्न होने से किसी भी जटिल परिस्थिति में अनुकूल वातावरण पाकर उससे सुधारवाद जन्म ले सकता है, समाजवाद को खतरा में डाल सकता है तथा प्रति-क्रान्ति के लिये उभाड़ पैदा कर सकता है। चाहे शान्तिमय तरीके से अथवा हिंसक तरीके से ही प्रतिक्रान्तिकारी परिवर्त्तन भी संघटित कर सकता है। चिन्तन तथा संस्कृति के निम्न स्तर रहने से पार्टी तथा पूरा-का-पूरा मजदूर वर्ग, धोखा में पड़कर गलत दिशा में सञ्चालित होते हुए समाजवाद तथा मार्क्सवाद का झंडा फहराते हुए ही सुधारवाद के रास्ते से पूँजीवाद का पूरी तरह पुनर्स्थापना कर सकता है।

सर्वहारा वर्ग के सांस्कृतिक स्तर की अनवरत चर्चा

तीसरी बात, एक और तथ्य ने चीन के वर्त्तमान नेतृत्व को पूरी तरह शंकाग्रस्त बना दिया है। वह है—युद्ध के बाद की अवधि में अन्त-र्राष्ट्रीय परिस्थिति में दिखी गई क्रान्तिकारी विलक्षणता, क्रान्तिकारी

आन्दोलन की बाढ़ एवं उभाड़ से डगमगाती हुई सारी दुनिया एवं एक कोने में ढकेला हुआ सिमटा साम्राज्यवाद तथा उसकी तुलना में वर्त्तमान सुस्त क्रान्तिकारी आन्दोलन, साम्राज्यवादियों द्वारा अपनायी गई पुनः आक्रामक भूमिका तथा चारों तरफ चलायी जाने वाली सशक्त प्रतिक्रान्तिवादी आक्रमण की वर्त्तमान स्थिति जिसके लिये मूलतः सोवियत संशोधनवाद और उसका संशोधनवादी दृष्टिकोण ही जिम्मेदार है। यह सर्वनाश हुआ भी तो एक ऐसी पार्टी के द्वारा जो लेनिन एवं स्तालिन के जैसे महान् नेतृत्वों की परम्परा वाली है, जिसने सर्वप्रथम समाजवादी राज्य की स्थापना की, समाजवाद का अपने यहाँ निर्माण किया और समाजवादी अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ बनाया और यह सब करके, स्तालिन के जीवनकाल में ही जो सोच रही थी कि किस तरह समाजवादी परिवर्त्तन को पूरा करते हुए साम्यवाद के प्रथम चरण में प्रवेश किया जाय। स्तालिन की मृत्यु के पहले हुई पार्टी कान्फ्रेन्स में इसका जिक्र किया गया था। फिर वैसी पार्टी में पार्टी के अन्दर से बिना किसी प्रभावकारी प्रतिरोध के ही—अचानक इस तरह के परिवर्त्तन का संघटन किस प्रकार सम्भव हुआ ? स्पष्टतः यह एक ही दिन में घटनेवाली घटना नहीं थी। इस घटना ने चीन के वर्त्तमान नेतृत्व को बुरी तरह शंकित कर दिया है।

इसलिये उनकी चिन्ता हुई चीनी क्रांति की गारंटी, उसकी बेरोक-टोक अग्रगति तथा विकास का पथ यदि सदा प्रशस्त एवं निर्बाध रखना हो, यदि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में एक पर एक विजय प्राप्त करते जाना हो तो उसके लिये सर्वहारा (Proletarian) संस्कृति का स्तर और सर्वहारा राजनीति के झंडे को ऊँचा उठाये रखना अनिवार्य है। इसके अलावे दूसरा कोई उपाय नहीं है—इस फैसले पर वे पहुँचे हैं। सोवियत युनियन में इस आवश्यकता की अवहेलना की गयी थी। कुछ हद तक एक तरह के आत्मसंतोष की मनोभावना के शिकार होने के

कारण स्तालिन जैसे महान् मार्क्सवादी नेता द्वारा भी इस पहलू पर कुछ भूलें हुई हैं। जिस स्तालिन ने स्वयं एक समय कहा था, "जैसे-जैसे समाजवादी व्यवस्था तथा उसकी अर्थनीति जितनी ही सुदृढ़ तथा संगठित होगी, वर्गसंघर्ष भी उतना ही तीव्र रूप धारण करेगा" वही स्तालिन सोवियत कम्युनिष्ट पार्टी की १६ वीं कांग्रेस में फिर यह कहते हैं कि, सोवियत समाज में वर्गविभाजन नहीं है, वह एक वर्गरहित समाज है। सोवियत नागरिक एक नये किस्म के नागरिक— समाजवादी नागरिक हैं। सोवियत समाज अन्दरूनी तौर पर वर्गसंघर्ष से मुक्त एक समाज है। समाज के अन्दर अन्तर्द्वन्द्व का विरोधात्मक (antagonistic) स्वरूप आज वहां नहीं रह गया।" इस प्रकार से कहना निश्चय ही गलत था क्योंकि विरोध का चरित्र अभी भी जरूर होगा, वर्ना राजसत्ता क्यों रह गयी? इस प्रश्न के जवाब में स्तालिन ने सिर्फ बाहरी द्वन्द्व यानी साम्राज्यवाद का होना तथा देश के अन्दर उसके प्रभाव की बात कही है। उस स्थिति में भी जहां तक मैं समझता हूँ, बाहर का प्रभाव समाज के अन्दर मात्र तभी फैल सकता है एवं अन्दरूनी द्वन्द्व पैदा कर सकता है जबकि समाज के अन्दर उसके काम करने लायक अनुकूल वातावरण हो।

परिणाम यह हुआ कि क्रांति के बाद जहां वर्ग-संघर्ष को तीव्र करना जरूरी था, सर्वहारा (प्रोलेटेरियन) सांस्कृतिक स्तर की चर्चा को और भी उन्नत बनाना आवश्यक था, बुर्जुआ विचारधारा के अनुप्रवेश के विरुद्ध प्रोलिटेरियन चरित्र के स्तर को अविराम चर्चा द्वारा अक्षुण्ण रखना वांछित था तथा (समाजवाद में) उत्पादन-व्यवस्था के चरित्र पलटने के साथ सामंजस्य कायम रखते हुए सांस्कृतिक-स्तर तथा राजनीति को भी लगातार उन्नत करने के लिये सांस्कृतिक क्रांति के झंडे को जो ऊंचा उठाये रखने की जरूरत थी उसे समाज-व्यवस्था कुछ हद तक संतुलित हो जाने पर सोवियत नेतृत्त्व की आत्मतुष्टि की मनो-

भावना के कारण नहीं किया गया एवं इसके परिणामस्वरूप सैद्धान्तिक स्तर में यह गिरावट आयी और संशोधनवाद पनप सका। चीन की कम्युनिष्ट पार्टी ने इस प्रकार वर्णन करते हुए विस्तार पूर्वक व्याख्या कर यह कहा है या नहीं मैं नहीं कह सकता। किन्तु उनके वक्तव्य की बहुत सारी बातों से मैंने इसे इसी रूप में समझा। ठीक इसी तरह से उनलोगों ने कहा हो या नहीं उनके अंदर यही शंका कार्य करती रही है।

आदर्श के क्षेत्र में पार्टी और जनता के बीच एकता कायम करना

चौथा :. चीन देख रहा है कि वह किसी भी दिन युद्ध में घसीटा जा सकता है। यद्यपि आज सारे संसार में युद्ध के विरुद्ध शांति की ताकत तथा उसकी प्रतिरोध क्षमता इतनी जोरदार हो चुकी है कि अकेला अमेरिका के लिए विश्वयुद्ध की आग भड़काने में बहुत सारी असुविधायें हैं-- हो सकता है कि आखिर तक वह विश्वयुद्ध वस्तुतः छेड़े ही नहीं, सिर्फ विश्वयुद्ध और अणुयुद्ध की बातें कर ब्लैकमेल (blackmail) ही करता रहे; लेकिन जब तक साम्राज्यवाद विश्व-शक्ति के रूप में कायम है तब तक युद्ध का कारण और खतरा तो बना ही रहेगा। इसलिए कोई भी क्रांतिकारी दल इस खतरे की सम्भावना को नजरअन्दाज नहीं कर सकता। हो सकता है कि समाजवादी शिविर के ही विभिन्न भूलों के फलस्वरूप एक दिन यह आक्रमण हो ही जाय। खास करके सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्त्व में परिचालित समाजवादी खेमा अभी चीन के साथ जैसा व्यवहार कर रहा है उसे देखते हुए यह कतई असम्भव नहीं लगता। फिर वैसी हालत में अगर चीन के अन्दर पार्टी और जनसाधारण के बीच इसी तरह की सैद्धांतिक कमजोरी बनी रही तो उस आक्रमण के मुकाबले में चीनी जनता एक व्यक्ति (one man) के रूप में कैसे खड़ी हो सकेगी ? साम्राज्यवादी

शक्तियों द्वारा खासकर चीन पर ऐसे हमले होने से न जाने स्थिति कैसी हो जायगी। उस हालत में चीन चारों ओर से घेरे में पड़ जा सकता है, सारी दुनिया के घेरे में। यहाँ तक कि नये स्वतंत्रता-प्राप्त मुल्क भी साम्राज्यवाद के दलाल बनकर स्थिति को किस हद तक बिगाड़ दे सकते हैं यह कहा नहीं जा सकता। नये स्वतंत्रता प्राप्त देशों में एक पर एक जो घटनाएँ घट रही हैं उन्हें मद्दे नजर रखते हुए ऐसी सम्भावना को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। जो बर्मा कल तक चीन के पक्ष में था वह आज अमेरिका की ओर मुँह मोड़ना शुरू कर दिया है। भारत जो कई वर्ष पहले चीन के मित्रों में था वह आज दूसरी तरह का है। हिन्देशिया का कैसा परिवर्त्तन हो गया! आज वह देश प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवाद के दलालों के फंदे में है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में जहाँ एक ओर क्रांतिकारी आंदोलनों की आखिर तक विजय होने की सुनहली सम्भावना है वहीं दूसरी ओर इस तरह की खतरनाक सम्भावनाएँ भी रह गयी हैं। इसीलिए ऐसी स्थिति में जब कि 'चीन का दमन करना' साम्राज्यवादियों की एक खुल्लम-खुल्ला घोषित नग्न नीति है जिसे मौका मिलते ही साम्राज्यवादी चरितार्थ करेंगे, चीन को भी ऐसे साम्राज्यवादी आक्रमण के विरुद्ध आखिरी आदमी तक जूझना पड़ेगा—चीनी क्रांति की रक्षा के लिए जान की बाजी लगाकर लड़ना पड़ेगा, यही उसकी अजेय (invincible) शक्ति है जिसके बल पर वह चुनौती दे रहा है कि "संसार की कोई भी ताकत चीन को बरबाद नहीं कर सकती। जो कोई भी चीन से टकराने आयगा वहीं ध्वंस हो जायगा।" कहना न होगा कि सारी जनता और पार्टी के बीच एक सैद्धान्तिक एकता ही उसकी वह शक्ति है जिसके बल पर वह इतनी बड़ी चुनौती दे सकता है। इसीलिए समाज के अन्दर प्रति-गामी विचारधारा का जो कुछ भी अवशेष रह गया है तथा नये सिरे से अनुप्रवेश हो रहा है उसे यदि अविलम्ब दूर नहीं किया जाय तो वैसी

विषम स्थिति में वे सारे तत्त्व जो आज सर नहीं उठा रहे हैं अथवा सर उठा कर भी जो आज आर्थिक क्षेत्र में तथा शासन-विभाग में थोड़ा बहुत सांगठनिक कठिनाई मात्र उत्पन्न कर रहे हैं उस दिन अन्दरूनी विध्वंसात्मक कार्य (internal sabotage) तथा गृहयुद्ध भी पैदा कर दे सकते हैं। इस तरह वे तत्त्व देश के अन्दर प्रतिक्रांति पैदा करके सारे चीन की जनता के लिए एक आदमी की तरह (like one man) खड़ा होने में बड़ी बाधा उत्पन्न कर सकते हैं। यह भी सांस्कृतिक क्रांति की फौरी जरूरत के तौर पर चीन के सामने मौजूद थी।

सांस्कृतिक आंदोलन का स्थायी संगठन बनाना

पाँचवाँ, यह निश्चित करने के लिए कि चीनी क्रांति और चीन की समाज-व्यवस्था, भविष्य में इस तरह से संशोधनवाद के फन्दे में पड़ने से बच सके इसलिए उसे (चीन को) सांस्कृतिक आंदोलन का एक स्थायी (standing) संगठन बनाने की आवश्यकता है। सभी तरह के बुर्जुआ चिन्तन जो अभी भी विभिन्न क्षेत्रों में तथा विभिन्न स्तर के पार्टी कार्यकर्त्ता और जनसाधारण के बीच मौजूद हैं,—के विरुद्ध पार्टी और जनसाधारण के सम्मिलित प्रयास से एक संघर्ष चलाना आवश्यक है। इसके अलावे जैसा कि क्रांति के इतने वर्षों के बाद भी रूस के समाज में हम देखते हैं, चीन के लिए तो वह कहीं अधिक सत्य है कि देश की जनसंख्या की तुलना में ऐसे लोगों की संख्या बिल्कुल नगण्य है जो मार्क्सवादी-लेनिनवादी पद्धति से सोचते हों। चीन में मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण लेकर चलनेवालों की संख्या कुल जनसंख्या की तुलना में बहुत ही कम है। दूसरे लोगों पर भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद का प्रभाव अगर है तो मात्र ऊपर-ऊपर से। फिर वे लोग जो मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण से सोचते-विचारते तथा कार्य करते हैं यानी पार्टी, उनमें भी बुर्जुआ भावना,

चिन्तन की गलतफहमी (confusions) तथा आधुनिक संशोधनवाद का प्रभाव दीख रहा है। नयी समाज-व्यवस्था का सापेक्ष स्थायित्व एवं अग्रगति तथा वस्तुगत लाभ (material benefit) के आधार पर व्यक्तिवाद अर्थात् एक नये रूप के व्यक्तिवाद का लक्षण वे लोग देख रहे हैं। इस व्यक्तिवाद का यानी समाजवादी व्यवस्था में यह जो व्यक्तिवादी प्रवृत्ति दीखती है इसका यथार्थ स्वरूप वे लोग समझ पाये हैं या नहीं यह बात अलग है। लेकिन यह कि ये सभी प्रवृत्तियाँ मजदूर वर्ग का वर्गीय आवेग (emotion) तथा लगन (dedication) के विरोधी हैं इनके इस स्वरूप को वे लोग समझ चुके—यह मानना ही होगा। इसीलिए इसे दूर करना भी अत्यावश्यक हो उठा है।

मजदूरों तथा जनसाधारण का भावनागत ढीलापन का अन्त करना

छठा, सारे चीन में मिलिट्री से लेकर सांस्कृतिक जगत तक विभिन्न क्षेत्रों तथा उत्पादन कार्यों में संलग्न कम्युनिस्ट तथा दूसरे कार्यकर्त्तागण जो आज चीनी क्रांति के जीवन-केन्द्र तथा मूल-शक्ति हैं—जिनका नेतृत्व केन्द्रीय कमिटी कर रही है तथा जिस सामूहिक नेतृत्व का ठोस मूर्त-रूप (concretised expression) माओ-त्से-तुंग तथा दूसरे नेतागण हैं जो संगठनात्मक नेतृत्व को संभाल रहे हैं—ये सभी पुराने नेतागण आज सत्तर से अधिक उम्र के हो चुके हैं। इनकी मृत्यु—चाहे जब कभी भी हो—पारापारी होगी, समयान्तर कम रहेगा। यह एक कठोर सत्य है और उनकी चिन्ता का यह भी एक कारण है। क्योंकि जब तक ये लोग जीवित हैं जनता बहुधा विश्वास पर कार्य करती है। उदाहरण के रूप में देखिए न, सोवियत युनियन की कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर इतनी गड़बड़ी तथा चिन्तन-स्तर की इतनी जो

निम्नता मौजूद थी उसे एक स्तालिन का व्यक्तित्व एवं सुदृढ़ संचालन ने प्रकट नहीं होने दिया। फलस्वरूप अपनी सारी गलती-खामियों के बावजूद उस समय तक कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग का अगुआ दस्ता (Proletarian vanguard) के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करती रही ! लेकिन सिर्फ एक इन्हीं के व्यक्तित्व के अभाव से किस तरह सारी पार्टी एवं जनसाधारण तरह-तरह के गलत चिन्तन एवं धारणाओं के शिकार हो गये ! अत: यह कोई असम्भव बात नहीं है। चीनी नेतृत्व को भी इससे सबक मिली। जिस समय आज के ये नेतागण नहीं रहेंगे और इन नये लोगों के जो इनकी जगह पर होंगे सैद्धान्तिक सांस्कृतिक स्तर में यदि बुनियादी परिवर्त्तन नहीं लाया जा सका एवं उस समय यदि जनता के बीच सर्वहारा सांस्कृतिक आन्दोलन का एक नया उभाड़ नहीं आया तो चीन में वह घटना अपने को दुहरा सकती है।

इसके अलावे चीन की समस्याओं को देखते हुए आज उसके लिये जो जरूरी है, यानी अपनी आन्तरिक समस्याओं के समाधान के लिए तथा बाहरी दुश्मनों से मुकाबला करने के लिए, साम्राज्यवादी शक्ति की हमले की नीति के विरुद्ध एक व्यक्ति (one man) के रूप में खड़े होने के लिए एवं सोवियत युनियन की मदद के बगैर ही (यहाँ तक कि उसकी ओर से उपस्थित बाधाओं का भी मुकाबला करते हुए) विभिन्न पहलुओं से होने वाली आर्थिक घेराबन्दी के विरुद्ध देश में समाजवादी पुनर्निर्माण कार्य को पूरा कर डालना निहायत जरूरी है। और इसीलिए अपनी अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए उसे अधिकतर सुसंगठित कर तेजी से विकसित करने के लिए जनसाधारण में लगन (dedication) की मनोभावना होनी चाहिए—श्रमिक तथा जनसाधारण के बीच विभिन्न स्तर पर एक तरह की ढीलीढाली (Laissez faire) जैसी भावना रहने से यह होने को नहीं।

क्रान्तिकारी आन्दोलन के हित में उन्नत आर्थिक और सामरिक शक्ति हासिल करना

सातवां, आज चीन अपने को अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रान्ति के मूल प्राण-केन्द्र के रूप में अनुभव कर रहा है। इसीलिए ऊँचे दर्जे की सामरिक, राजनैतिक तथा सामाजिक शक्ति के रूप में एवं संस्कृति-जनित क्षेत्र में एक व्यक्ति जैसा उसका खड़ा होना और उसकी लगातार शक्ति-वृद्धि आणविक युद्ध के विरुद्ध शांति के पक्ष में जिस तरह एक गारंटी है उसी तरह दुनिया के विभिन्न देशों के तमाम क्रान्तिकारी आन्दोलनों को सक्रिय मदद पहुँचाने तथा मजबूत बनाने के लिए भी आज यह निहायत जरूरी है। इसीलिए यह सिर्फ उसकी आन्तरिक आवश्यकता—अपनी अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकता तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही उत्पन्न नहीं हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद-विरोधी जिन आंदोलनों को वह आज मदद पहुँचाना चाह रहा है उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए भी चीन का काफी तेजी से एक उन्नत आर्थिक एवं सामरिक शक्ति के स्तर पर आना जरूरी है। लगभग सोवियत युनियन के स्तर पर उसका आ जाना आवश्यक है। क्योंकि सुनने में चाहे आश्चर्यजनक भले ही लगे, पर यह सच है कि सोवियत नेतृत्त्व की अजीबोगरीब भूमिका के चलते ही आज आर्थिक तथा सामरिक क्षेत्रों में सोवियत की श्रेष्ठता इस मामले में कुछ नुकसानदेह रही है। चीन एवं सोवियत युनियन के बीच आर्थिक क्षमता की जो विषमता है उसे अगर दूर किया जा सका तो अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन की मौजूदा दुरावस्था को बदल डालना, दूसरे-दूसरे देशों को प्रभावित करना, साम्राज्यवाद-विरोधी ताकतों को तथा समाजवादी खेमा की नेतृत्त्वकारी शक्ति को विश्वव्यापी साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन में एकजुट करना उसके लिए सम्भव हो सकेगा। क्योंकि ऐसी बहुत

सारी मध्यशक्तियाँ हैं जिन्हें आज साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन में चीन के पक्ष में लाया जा सकता था परन्तु मात्र अपनी अल्पविकसित अवस्था के कारण चीन वैसा नहीं कर पा रहा है। चूँकि आर्थिक दृष्टि-कोण से उन्हें आज सोवियत युनियन की मदद अधिक मिल रही है। अगर चीन जल्द-से-जल्द पर्याप्त आर्थिक क्षमता हासिल कर लेता तो साम्राज्यवाद-विरोधी लड़ाई में वास्तविक भूमिका रखनेवाले उन सारे देशों पर प्रभाव डाल सकता और इस तरह उन्हें सोवियत के प्रभाव से मुक्त कर विश्व-व्यापी साम्राज्यवाद-विरोधी लड़ाई में सीधे शामिल कर ले सकता था।

सेना में सर्वहारा राजनीति की चर्चा को चालू रखना

आठवां, चीनी फौज के एक हिस्से के अन्दर साम्राज्यवादी देशों की आधुनिक सेना की बराबरी में लाने के लिए जल्द-से-जल्द हथियारों के यंत्रीकरण तथा सेना के आधुनिकीकरण की ओर एक जबर्दस्त झुकाव पैदा हो रहा था जिसके फलस्वरूप सर्वहारा राजनीति की चर्चा द्वारा सेना में भी राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना के स्तर को ऊँचा उठाने की जरूरत को वे करीब-करीब गौण बना चुके थे। यह भी चीन के नेतृत्त्व को बहुत बुरी तरह सशंकित कर दिया था। साम्राज्यवादी देशों के निरन्तर युद्धोन्माद के सामने हथियारी ताकत को जल्द आधुनिक करने तथा बढ़ाने की जरूरत को चीनी सांस्कृतिक क्रांति का नेतृत्त्व जरा भी कम करके नहीं आंकता है वरन्, इस क्षेत्र में उसके प्रयास तथा इतने कम समय में उसकी आश्चर्यजनक उन्नति ने दुनिया के विभिन्न गुटों को भी चकित कर दिया है। लेकिन हथियारी ताकत की कितनी भी उन्नति क्यों न हो जाय, किसी समाजवादी मुल्क की सेना यदि सर्वहारा (proletarian) राजनीति तथा क्रांति

की प्रेरणा से प्रेरित न हो तो उसका बुर्जुआ सेना से आखिर तक कोई चारित्रिक अन्तर नहीं रह जाता। क्योंकि, मात्र क्रांति की प्रेरणा तथा प्रोलेटेरियन राजनीति की चर्चा के द्वारा ही समाजवादी मुल्क की सेना उस अमोघ शक्ति को प्राप्त करती है जिससे मुकाबला करना किसी भी आधुनिक बुर्जुआ देश की सेना के लिए सम्भव नहीं। इसीलिए, सेना में अगर प्रोलेटेरियन राजनीति की चर्चा से हथियारों की तकनीकी उन्नति पर ज्यादा ध्यान दिया गया तो सेना में क्रान्ति की आवश्यकता से जो त्याग और लगन (dedication) की भावना पैदा की गयी थी उसके समाप्त होने का खतरा उत्पन्न हो जायगा—जिसका लक्षण अभी थोड़ा-बहुत दीख भी रहा था। इसी वजह से जनता के साथ सेना को भी संलग्न करते हुए इस खामी को दूर करना भी वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रांति का एक प्रमुख लक्ष्य है।

बुद्धिजीवी तथा क्षमतावान व्यक्तियों के सैद्धांतिक स्तर का समाजवादी क्रांति से सामंजस्य करना

नवम्, वैज्ञानिकों तथा उन लोगों को जो सामाजिक प्रगति में मदद कर रहे हैं, सामाजिक विकास के क्षेत्र में जिनकी वास्तविक देन (contribution) है उन्हें भी संग्राम से छोड़ा नहीं जा रहा है; क्योंकि समाज के सभी स्तरों के जनसाधारण पर इनके कार्यों के फलस्वरूप जो प्रभाव पड़ता है उससे ये लोग 'हीरो' बन जाते हैं। समाज पर उनके प्रभाव का स्वरूप कुछ और तरह का होता है। इसीलिए इनके सांस्कृतिक तथा विश्व-संबन्धी दृष्टिकोणों को भी परिवर्तित करना जरूरी है। उनके भी चिन्तन तथा सैद्धांतिक चेतना के स्तर का समाजवादी क्रांति के प्रसार तथा विकास के साथ सामंजस्य होना जरूरी है। चीन की सामाजिक व्यवस्था में जो लोग पार्टी के अन्दर उच्च क्षमता के पदों पर है तथा जो लोग आर्थिक क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं उनके

सोच-विचार के स्तर का जो प्रतिरूप (reflection) देखा जा रहा है वह इसके लिए काफी नहीं है, आवश्यकतानुसार संगतिपूर्ण नहीं है। अतः, इस असंगति को दूर करना जरूरी है—इसे fight out करने की आवश्यकता है। इसीलिए, इन सभी कारणों से ही सांस्कृतिक क्रांति की जा रही है। सांस्कृतिक क्रांति की यह लड़ाई पार्टी के अंदर व्यक्तिगत तौर पर और सामूहिक तौर पर, प्रशासन के अन्दर, शासन-पद्धति के स्वरूप में, कार्य-पद्धति में, शिक्षा-पद्धति में, यहाँ तक कि विज्ञान के क्षेत्र में भी मौजूद सभी तरह की प्रतिगामी भावना-धारणाओं को धो-धा कर साफ कर देने की लड़ाई है।

वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रांति दुनिया के तमाम कम्युनिस्टों के लिये सीखने का विषय है

हाँ, यह हो सकता था कि इस संग्राम को पहले पार्टी के अन्दर ही चला कर बाद में पार्टी एक निर्णय के आधार पर सारी जनता को प्रेरित करती। पुरानी पद्धति कुछ ऐसी ही थी। इस सिलसिले में मैं कहूँगा कि माओ-त्से-तुंग ने एक अद्‌भुद, लाजवाब* सांगठनिक साहस का प्रमाण दिया है। सारी दुनिया के कम्युनिस्टों को इससे सबक लेने की जरूरत है। रूस में भी तो यह हुआ था। पर वहाँ यह कार्य पार्टी के अन्दर ही किया गया था। इस तरह करने से जनसाधारण के मन में नाना प्रकार की शंका तथा संदेह की भावनाएँ (apprehension) रह ही जाती हैं—उन्हें दूर नहीं किया जा सकता; जनसाधारण एक ठोस तथा साफ समझदारी के आधार पर एक व्यक्ति (one man) की तरह पार्टी के पीछे खड़ा नहीं हो जाता। अगर खड़े होते भी हैं तो वह बहुत हद तक नेतृत्व के प्रभाव से अथवा मजबूरी से अथवा किसी गलत धारणा द्वारा परिचालित होकर या अचेतन अंधतापूर्ण आवेग के वश में होकर ही। और जनसाधारण के मन में

* magnificent, brilliant

इस प्रकार शंका या संदेह रह जाने से किसी भी संकट की घड़ी में प्रतिक्रियाशील तत्त्व उसे इस्तेमाल करते हुए जनता की एकता में फूट डालने की कोशिश कर सकता है तथा उससे खतरा उत्पन्न होने की सम्भावना भी रहती है। ऐसी दुःस्थिति में (समाजवाद की) रक्षा के लिए कोई कुछ काम नहीं आता। यदि कम-से-कम कुछ क्षेत्रों में पार्टी और जनता के बीच एक खास स्तर पर सैद्धान्तिक एकता कायम हो जाती है तो मात्र वही उस संकट की स्थिति में बचाव का काम कर सकती है। इसीलिए पार्टी की मूल नीतियों के पक्ष में जनता को सक्रिय करना, पार्टी के नेतृत्व में जनसाधारण को कार्य कराने के लिए जनसाधारण की चेतना को उस आवश्यक स्तर तक उन्नत करना जरूरी है एवं यह करने के लिए इस सांस्कृतिक आंदोलन में जनता को शामिल करना होगा—जनसाधारण को तर्क-वितर्क (debate) करने देना होगा। फिर इससे खतरनाक विपत्ति आने की आशंका भी जरूर है। लेकिन उस विपत्ति को झेलने की हिम्मत पार्टी कर सकती है—वह पार्टी जो सत्तारूढ़ है, जो सेना को कन्ट्रोल करती है, जो आइन-कानून पर नियन्त्रण रखती है, जो राजसत्ता परिचालित कर रही है एवं यहाँ तक कि जो जनता के विभिन्न कर्मक्षेत्रों में सभी स्तरों पर अपने संगठन को जाल की तरह फैला चुकी है। ऐसी पार्टी ही इस विराट कर्मकांड की सारी विपत्तियों के बोझ को उठाने का साहस कर सकती है—एवं यह साहस उन लोगों (चीन) ने किया। इससे वे भयभीत नहीं हुए। पार्टी के नेतृत्व एवं उच्च क्षमता के पदों पर जो लोग हैं, उनकी खुली आलोचना करने का पूर्ण अधिकार सारी जनता को दे दिया गया है। इससे जो विपत्ति पैदा होने की सम्भावना है उसे झेलने का बीड़ा उठानेवाली पार्टी कोई मामूली पार्टी नहीं है। वह जान-बूझ कर ही तो यह रास्ता ले रही है। जिस जनता को जगाया गया वही उत्तेजनावश उस नेतृत्व के विरुद्ध उल्टे-सीधे कार्य करने

लग सकती है जो उसे जगाया हो। इसके लिए बचाव की आवश्यक व्यवस्थाएँ की गयी हैं। इसके अलावे यह भी सोच-समझ लिया गया है कि जनता को आंदोलन में संलग्न करते हुए सांस्कृतिक क्रांति संचालित करने से यहाँ-वहाँ कुछ-कुछ ज्यादती हो सकती है। लेकिन उसके लिए आंदोलन के सारे उभाड़ तथा मूल लक्ष्य के बारे में उनलोगों ने जनता को हतोत्साह नहीं किया। केन्द्रीय कमिटी के प्रस्ताव में यह साफ शब्दों में एलान कर दिया गया था कि जहाँ कहीं ज्यादती करते हुए अपराध के कार्य किये जायेंगे वहीं उसके लिए कानूनी दंड भोगना पड़ेगा। इस सिलसिले में जो लोग किसी की सम्पत्ति तथा घर-द्वार जलायेंगे, लूट या हत्या करेंगे अथवा इस तरह के दूसरे अपराध-कार्य करेंगे उन्हें कानून दंड देगा। लेकिन इस तरह की घटनाओं के बहाने से मूल सांस्कृतिक आंदोलन के कार्यक्रम को कतई स्थगित नहीं किया जा सकता।

अब जबकि आंदोलन शुरू हुआ है तो, हो सकता है कि पार्टी के नेतागण, यहाँ तक कि जो नेता सही रास्ते चल रहे हैं वे भी जनता की गैर-जिम्मेदार आलोचना के पात्र बनकर दिक्कत महसूस करेंगे। लेकिन इससे उन्हें न तो परेशान होना चाहिये और न मूल लक्ष्य से ही वे इसके चलते चुक सकते हैं। इसलिये नेताओं को बार-बार कह दिया जा चुका है कि वे सांस्कृतिक आंदोलन में होनेवाली समालोचना से भयभीत न हों। आम जनता सही तरीके से भी समालोचना कर सकती है, गलत तरीके से भी। उससे मात्र वही डरेगा या पथ-भ्रमित होगा जो सही-सही प्रोलेटेरियन विचार धारा से प्रेरित क्रांतिकारी नहीं है। सच्चे क्रांतिकारी के लिए समालोचना से डरने की कोई वजह नहीं है। वे जनता से कुछ छिपाते नहीं हैं। अगर कुछ छिपाते हैं तो वह पार्टी और क्रांति की ही जरूरत से। उनके लिये व्यक्तिगत ऐसे कुछ भी नहीं हो सकते कि जिसे जनता से छिपाना जरूरी हो। कभी-कभी

कुछ बातों को अवश्य ही गुप्त रखना पड़ता है पर मात्र तभी ऐसा किया जाता है जबकि पार्टी स्वयं इसकी जरूरत महसूस करती है। यहाँ (चीन में—अनुवादक) पार्टी समझ रही है कि खुलकर समालोचना होना ही ठीक है। इसलिये इसमें व्यक्तिगत तौर पर कुछ महसूस करने की बात नहीं है भयभीत होने का भी कोई तर्क-संगत कारण नहीं है। जैसा कि सांस्कृतिक क्रांति के अन्दर ही एक समय एक आवाज उठी थी। यह तो सभी को मालूम है कि माओ-त्से-तुंग की अगुआई में ही चीन की सांस्कृतिक क्रांति संघटित हुई है। इसकी घोषणा सम्पूर्णतः माओ का ही चिन्तन है। फिर भी एक समय कुछ लोगों ने यह प्रचार करना शुरू कर दिया था कि माओ धनी किसान घर का लड़का है अतः माओ बुर्जुआ है—इत्यादि।

लेकिन इससे माओ-त्से-तुङ्ग को विभ्रान्त नहीं किया जा सकता था। उन्होंने स्वयं इस प्रचार की अनुमति दी थी। क्योंकि अगर इसकी चर्चा नहीं होती तो इस प्रश्न का समाधान नहीं हो पाता और यह बात दबी हुई ही रह जाती। इसकी खुली चर्चा होने से यह दिखाने का भी मौका मिल सका कि इस प्रश्न को इस तरह उठाने में गलती कहाँ और कैसी है एवं जब किसी प्रश्न का समाधान ऐसे तरीके से किया जाता है तब उक्त प्रश्न के सम्बन्ध में एक साफ समझदारी बनती है, धारणा की एक स्पष्टता (Clarity) पैदा होती है। दूसरा तरीका यह है कि किसी बात को लोग मानो वातावरण के दबाव से मान लिये हों किन्तु मन में प्रश्न भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ ही हो। जहाँ इस तरह की बात होती है वहाँ समझदारी के मामले में अन्धता तथा यान्त्रिकता रह जाती है।

इसलिए प्रत्येक क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ता का यह फर्ज हो जाता है कि वह जनता तथा सर्वहारा के इस विप्लवात्मक आन्दोलन के सक्रिय कार्य-

कर्त्ताओं के साथ-साथ रहकर उनकी गलती-खामियों को दूर करने में मदद करे। इस तरह पार्टी जनता को सक्रिय करते हुए इस आन्दोलन का सञ्चालन करेगी एवं अवश्य ही इस आन्दोलन को अपने नियन्त्रण में भी रख सकेगी। पहले यह सोचा नहीं गया था कि सेना भी इसमें शामिल होगी। बाद में ११वाँ प्लेनरी अधिवेशन के फैसले में कहा गया है कि अगर जरूरत हुई तो सेना को भी इसमें हिस्सा लेना पड़ेगा। सेना में भी मतभेद रह सकता है। इसके अलावे अगर यह आन्दोलन कहीं खतरनाक संघर्ष का रूप ले लिया तो उसका भी नियन्त्रण करना होगा। निचोड़ में बात यह है कि एक ओर तो इस आन्दोलन को अनुशासित ढंग से सञ्चालित करना होगा दूसरी ओर जरूरत पड़ने पर उसे नियन्त्रित भी करना होगा; लेकिन आन्दोलन में जनता के शामिल होने के इस चरित्र को कतई बर्बाद नहीं किया जा सकता—यही मूल बात है।

विशाल जनसमूह को शामिल करते हुए सांस्कृतिक क्रान्ति की आवश्यकता

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि देश के विभिन्न स्तर के सभी जन-साधारण को इस आन्दोलन में शामिल करते हुए इस तरह आगे बढ़ने के रास्ते को ही चीन की पार्टी ने क्यों अपनाया? इसकी वजह यह थी कि इसके द्वारा नेता से लेकर आम पार्टी-कार्यकर्त्ता एवं जन-साधारण तक सभी लोग गलती-खामियों से छुटकारा पाने का मौका पायेंगे। चीन का वर्त्तमान नेतृत्व सांस्कृतिक क्रान्ति के वर्त्तमान सांगठनिक ढाँचे को एक स्थायी रूप देना चाह रहा है। इसलिए यह सब चलता रहेगा। यह ठीक है कि आज जिन सारी समस्याओं के समाधान के लिए सांस्कृतिक क्रान्ति का यह आन्दोलन चलाया जा रहा है—भविष्य में, जबकि ये समस्याएँ नये किस्म की होंगी तब आन्दोलन के आधार-भूत मसलों का भी परिवर्त्तन होगा।

परन्तु, जनता को आन्दोलन में शामिल करते हुए आन्दोलन का स्थायी सांगठनिक हथियार गठित करने की यह जो पद्धति चीन ने अपनायी है वह निराली है—उसे हतोत्साह नहीं किया जा सकता।

जिस किसी पद्धति से भी आन्दोलन क्यों न किया जाय उसमें जनता को शामिल करते हुए बढ़ने से, हमारे ख्याल से, गलती की सम्भावना कम रहती है। और जनता को बिना सम्मिलित किये आन्दोलन करने से यदि उसमें सचमुच गलती नहीं भी होती हो तब भी जनता के मन में कुछ शक-सुबहा रह जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मानो किसी व्यक्ति के विरुद्ध सचमुच सही तौर पर ही सजा की कार्रवाई की गई हो, परन्तु जनता अपने ढंग से मनगढ़न्त निष्कर्ष निकाल लेती है कि उसे षड्यन्त्र से ही हटाया गया होगा। लेकिन यदि जनता को आन्दोलन में शामिल किया जाता है तो वैसी बात नहीं हो पाती है। उस हालत में भी लोग जरूर यह सोच सकते हैं कि अमुक कार्रवाई के पीछे कोई षड्यन्त्र रहा होगा, पर वहाँ खुलकर तर्क-वितर्क करने की गुञ्जाइश रहती है।

एक दल अगर षड्यन्त्र के होने की बात कहता हो तो दूसरा षड्यन्त्र न होने की बात भी कह सकता है। फलतः एक तर्क-वितर्क चल रहा है और धारणा स्पष्ट हो रही है; बहुत सारे नये तर्क सामने आ रहे हैं; बहुत सारे दस्तावेज पेश किये जा रहे हैं; विवाद में संलग्न विभिन्न पक्षों द्वारा सारे तथ्य रोशनी में लाये जा रहे हैं। इसलिए बारम्बार यह मनाही कर दी गयी है कि विरोधी आलोचक मात्र को ही दुश्मन नहीं समझ लेना चाहिए। फिर यह भी न हो कि जो यथार्थ शत्रु हैं उनके बारे में ऐसा सोचा जाय कि जनता गलतफहमी के कारण उसके प्रति शत्रु जैसा आचरण कर रही है। इसीलिए, कौन यथार्थ दुश्मन है और कौन साधारण व्यक्ति होते हुए भी बुर्जुआ चिन्तन के भ्रम में पड़कर तथा प्रतिक्रियाशील तत्त्वों के प्रभाव के कारण शत्रु जैसा आचरण कर रहा है इसके अन्तर को अच्छी तरह

समझना होगा और दुश्मनों को आम लोगों से विच्छिन्न करना होगा। इसीलिए इस तरह के संघर्ष के द्वारा आखिर तक जब एकता हासिल की जाती है, सभी प्रतिक्रियाशील विचारों से मुक्त होते हुए जो एकता कायम की जाती है वह कुछ हद तक ज्यादा ठोस होती है—वह एकता कुछ अधिक स्पष्ट और पक्की समझदारी के आधार पर बनी बहुमत शक्ति की एकता, जनता और पार्टी की एकता, पार्टी कार्यकर्त्ताओं और नेतृत्व के बीच की एकता होगी। वर्त्तमान परिस्थितियों में कम-से-कम इससे भी कुछ हद तक एक गारंटी सी हो जाती है।

कोई यह सोच सकता है कि इस तरह से जनता को शामिल करते हुए इस आन्दोलन को करने में पार्टी के लिए कठिनाई हो सकती है। कठिनाई से मतलब यह है कि बहुत तरह की गड़बड़ी हो सकती है। लेकिन गड़बड़ी चाहे जो हो, आज यदि चीन को उसकी अन्दरूनी और बाहरी समस्याओं का समाधान करना हो, जनता के मन से हर तरह का शक-सुबहा दूर करना हो तथा राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना के आधार पर यदि उसे जनता और पार्टी के बीच मजबूत एकता लानी हो तो इसकी जरूरत है। वर्ना, चाहे ऊपर से जितने भी प्रचार कार्य किये जाते रहें, जनता में वह चहल-कदमी की प्रेरणा नहीं आ सकती। जनता स्वयं संग्राम करते हुए अनुभव प्राप्त कर सीखने का मौका नहीं पायगी। सुनी हुई बातों को मानकर चलती रहेगी परन्तु अन्धतापूर्ण तरीके से। लेकिन यदि इस पद्धति से आन्दोलन को चलाया जाता है तो वितर्क तथा संघर्ष का अवसर मिलता है, लोग खुलकर बहस मुवाहसा कर सकते हैं। मन में बातों को छिपाये रखते हुए शक-सुबहा को बढ़ाते नहीं!

इससे जाहिर है कि इस सांस्कृतिक क्रान्ति के माध्यम से वे लोग पार्टी के साथ जनता का, उनके अपने शब्दों में सैकड़े पंचानवे लोगों की, एकता कायम करना चाह रहे हैं—वह एकता जो आदर्श पर

आधारित हो। मतान्तर तथा विचित्रता को संघर्ष में लाकर ही वे इस एकता को प्राप्त करना चाह रहे हैं। इस पद्धति के तौर पर यह बहुत ही वैज्ञानिक मालूम पड़ रहा है। इस सम्बन्ध में प्रश्न बस यही रह जाता है कि क्या इस क्रांति को सही रास्ते परिचालित करना सम्भव होगा ? अथवा यह कोई खतरनाक परिणाम लायगा ? चीन की पार्टी ने बड़ी हिम्मत के साथ इस जिम्मेदारी को कन्धे पर उठा लिया है एवं इस तरह खतरे की सारी सम्भावनाओं के बावजूद चीन जिस साहस के साथ इस विराट काण्ड को सम्पन्न कर रहा है वह, मैं फिर कहूँगा, वास्तव में अनुपम (magnificent) है। सारी दुनिया में जहाँ कहीं भी कम्युनिस्ट लड़ाई के मैदान में हों उनके लिए बहुत सी चीजें इसमें सीखने की हैं।

गलती करना ही विरोधी तत्व में परिणत होना नहीं

अब इस सांस्कृतिक क्रान्ति की कुछ गलती-खामियों को लेकर कुछ प्रश्न उत्पन्न हुए हैं जिन पर विचार करना चाहिए। जैसा कि एक सवाल यह है कि इसमें अपनायी गयी पद्धति (approach) कुछ हद तक यान्त्रिकतापूर्ण है एवं इससे आखिर तक निराधार आत्मकेन्द्री चिंतन (subjective) के फन्दे में फँसने का खतरा है।

पहले ही से इस सम्बन्ध में सतर्क नहीं रहने से यह खतरा अवश्य ही आ सकता है। इस यान्त्रिकता के स्वरूप के बारे में मैं आगे फिर चर्चा करूँगा। लेकिन कुछ लोग यह सोच रहे हैं कि चूँकि इस खतरा की सम्भावना मौजूद है अतः चीन अवश्य ही मार्क्सवाद से गिर चुका होगा। ऐसे लोग यह समझ नहीं पाते कि 'हो सकता है' और 'हो चुका है' इन दोनों के बीच एक चरम विन्दु (nodal point) का अन्तर है। जिस प्रकार गलती करने का ही मतलब यह नहीं हो

जाता है कि कोई मूलतः विरोधी बन चुका हो उसी तरह किसी व्यक्ति को गलती करते देख कर ही हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते हैं कि वह व्यक्ति प्रतिक्रांतिवादी बन चुका है। हाँ, गलती करते हुए धीरे-धीरे कोई उस चरम बिन्दु तक पहुँच सकता है जहाँ पहुँचने से वह प्रतिक्रांतिवादी बन जायगा। अतः, यदि चिंतन के स्तर के नीचा होने की वजह से जो थोड़ा-बहुत यांत्रिकता मौजूद है उसे चीन की पार्टी दूर नहीं कर सकी तो इसके फलस्वरूप आगे चलकर यह पार्टी व्यक्तिनिष्ठावाद (subjectivism) का शिकार होती हुई बहुत तरह की समस्याएँ पैदा कर सकती है। इस आशंका तक तो बात ठीक ही है लेकिन अगर यह कहना हो कि 'वह भ्रष्ट हो चुकी है' तो तथ्यों से इसकी सच्चाई को साबित करना पड़ेगा। इसीलिए मैं यह नहीं कहता कि उसकी चिन्तन पद्धति सही है पर चिन्तन का स्तर नीचा है एवं इससे यह भी निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह आम तौर पर लागू होनेवाली बात है—सभी क्षेत्रों में चिन्तन के निम्न-स्तर का लक्षण दीखेगा ही। यह बात इस तरह की नहीं है। एक ओर जहाँ हम चिंतन के स्तर को नीचा होने की झलक भी पाते हैं वहीं दूसरी ओर हम यह भी तो देख रहे हैं कि जनता में शक-सुबहा न रह सके इसके लिए जरूरत के मुताबिक जनता को आंदोलन में शामिल करते हुए किस बेजोड़ ढंग से वे लोग इस विराट कर्मकांड को चला रहे हैं। मार्क्सवाद का यह जो एक नया पहलू उन्होंने अपने आन्दोलन द्वारा प्रस्तुत किया यह तो सचमुच ही अद्वितीय (unique) है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो सैद्धान्तिक विवाद चल रहा है उसे किस पद्धति से संचालित करना चाहिए—इस प्रसंग में बोलते हुए हमलोगों ने बहुत दिन पहले ही 'An Appeal to the leaders of the International Communist movement' शीर्षक लेख में कहा था कि जहाँ तक सिद्धान्त तथा बुनियादी वसूल के सवाल पर लड़ाई हो वहाँ पार्टी कार्यकर्त्ताओं, जनता तथा मजदूर वर्ग को भी शामिल कराते

हुए लड़ाई परिचालित करना चाहिए। सन् १९६३ में लिखे गए उस लेख में मैंने इस विषय पर विस्तृत रूप से चर्चा की थी। कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में चीन की वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रान्ति में ही पहले-पहल इस नीति को अमल में लाया जा रहा है। सच पूछिये तो मुझे भी इतनी उम्मीद नहीं थी कि इतने कम समय के अन्दर ही चीन की कम्युनिस्ट पार्टी इस नीति को व्यापक तौर पर अमल में प्रयोग करेगी। इस सांस्कृतिक क्रान्ति में एक ओर जहाँ हम चिन्तन के स्तर को आवश्यकता से नीचा पा रहे हैं वहीं दूसरी ओर इसमें बहुत सारी रचनात्मक चीजें भी तो हैं जो सराहनीय हैं।

समालोचना का दृष्टिकोण सही होना चाहिए

लेकिन हम देख रहे हैं कि जो लोग आज इसकी आलोचना कर रहे हैं वे एक तरह की बहादुरी की मनोभावना दिखा रहे हैं सांस्कृतिक क्रान्ति के सम्बन्ध में प्रत्येक कम्युनिस्ट को बोलने का अधिकार है और उसे बोलना चाहिए भी। यह ठीक है क्योंकि कम्युनिस्ट के विकास और विस्तार के मूल प्रश्न से यह सम्बन्धित है। इसीलिए अगर इसमें कहीं गलती-खामी नजर आती हो तो दिखाना पड़ेगा—और यदि कहीं इससे उन्नत सिद्धान्त का पता लगे तो वह भी बताना ही पड़ेगा। बहुत सारे विषयों में ही वे लोग हमलोगों से काफी आगे बढ़े हुए हैं—उनके मुकाबले में हमलोग लगभग न के ही बराबर हैं यह मानी हुई बात है। पर ऐसी स्थिति में भी यह हो सकता है कि किन्हीं खास मसले पर हमलोग ऐसे कुछ कह सकते हैं अथवा ऐसा कोई विचार व्यक्त कर सकते हैं जो उनसे भी उन्नत हो तथा जो उनको भी काम आवे। मतलब यह है कि एक ओर जैसे हम उनकी बातों को इसलिए अन्धतापूर्वक मान नहीं लेंगे कि वह पार्टी विराट है, उसी तरह दूसरी ओर मात्र इसलिए कि हमलोग कुछ नयी बातें कह रहे हैं हम उनके सारे सराहनीय तथा महान कार्यों को न तो अस्वीकार करेंगे और

न छोटा करके ही देखेंगे। वरन् हमलोग कुछ सीख नहीं पायेंगे। वैसा करने से कभी बुजुआ लोगों के ऐसा ही हमलोग भी आत्मतुष्टी की मनोभावना के शिकार हो जायेंगे। तब तो मार्क्सवाद का नाम लेते हुए ही हमलोग भी कभी उन बुजुआ शैतान पण्डितों के ही रूप में परिणत हो जायेंगे जिनका जिक्र उनलोगों ने किया। इसीलिए हम समझते हैं कि समालोचना के लायक कुछ अगर हो भी तो समालोचना का दृष्टिकोण यह नहीं होना चाहिए।

क्रान्तिकारी मननशीलता बुर्जुआ-पण्डिताई से भिन्न है

यद्यपि इस विषय से इसका सीधा सम्बन्ध नहीं है, फिर भी प्रसंगवश मैं एक और बात कहना चाहता हूँ। वह बात यह है कि किताबी पण्डिताई (Scholasticism) से क्रान्तिकारी मननशीलता (Revolutionary intellectualism) मूलतः भिन्न है। क्रान्तिकारी मननशीलता उद्देश्यपूर्ण, सृजनात्मक, सक्रिय तथा सहायक होती है और इसीलिए इसमें अहंकार की भावना नहीं होती। इसके लक्षण हैं कि न तो यह बेजरूरत अपने को बड़ा बनाने के लिए उत्सुक रहती है और न ही जरूरत होने पर कुछ बोलने अथवा करने में ही डरती या हिचकिचाती है। यह अपने को किसी से बड़ा साबित करने के लिए परेशान नहीं होती है। और, चूँकि क्रिया करने के उद्देश्य से ही कुछ भी करती या बोलती है, अतएव यह बिल्कुल अमोघ होती है, यह क्रिया करती है। लेकिन किताबी पण्डिताई में ये सब लक्षण अथवा उद्देश्य नहीं होते हैं। इसीलिए, मैं कहूँगा कि सच्चे कम्युनिस्ट लोग जब उन लोगों की समालोचना करेंगे तब साथ हो उन्हें उनका प्राप्य सम्मान भी देना होगा। कितना बड़ा भार उठा लिया है उन लोगों ने! अगर जरा भी विनय होता तो इसे समझने में कठिनाई नहीं होती कि इतना

बड़ा भार उनलोगों ने यों ही लड़कपनी से नहीं उठा लिया है। इसकी पृष्ठभूमि में कुछ गम्भीर सैद्धान्तिक आधार और अनुभव कार्यरत हैं।

एक-एक व्यक्ति की चेतना का सामाजिक चेतना में विलयन होने से ही नेता के रूप में व्यक्ति की ऐतिहासिक भूमिका का अन्त होगा।

इधर चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति के सम्बन्ध में तरह-तरह की समालोचना हो रही है—यहाँ तक कि बहुत से कम्युनिस्ट क्षेत्रों द्वारा भी समालोचनाएँ की जा रही हैं एवं उन समालोचनाओं से एक प्रकार की शंका की भावना व्यक्त हो रही है। पहली बात इनमें यह है कि बहुतों का ख्याल है कि चीन में माओत्सेतुंग को लेकर व्यक्ति-पूजा को प्रश्रय दिया जा रहा है। अर्थात् इस सांस्कृतिक क्रान्ति के संदर्भ में एवं चीन के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन में नेता के रूप में माओत्सेतुंग की जो आज स्तुति हो रही है—जैसे, माओ सभा में आ रहे हैं, उसकी एक घोषणा की गई, फिर वे सभामंच पर आये तो नारे पर नारे लगने लगे—इन सबके बारे में उन लोगों का कहना है कि वहाँ व्यक्ति पूजावाद को प्रश्रय दिया जा रहा है। इस सारी चीजों से ऐसा लगना अस्वाभाविक भी नहीं है। लेकिन इस प्रसंग में एक महत्वपूर्ण बात जो याद रखने की जरूरत है वह यह है कि यदि जनता को आन्दोलन में प्रेरित करना है, उस जनता को जो आज भी उच्च स्तरीय कम्युनिस्ट की श्रेणी में नहीं पहुँची है, तो श्रद्धा प्रकट करने के लिए इस तरीका का सिखाया जाना ही उनके लिए सर्वोत्तम है। इसमें कुछ यांत्रिकता जैसी अवश्य लगती है किन्तु उनके लिए ऐसा करना तत्काल एक वास्तविक आवश्यकता है। इससे आँख मूँदकर कोई भी क्रान्ति संघटित नहीं की जा सकती। क्रान्ति इससे मुक्त केवल उसी दिन हो

सकेगी जिस दिन समाज के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति की चेतना सामाजिक चेतना के स्तर तक उन्नत हो जायगी। अर्थात् व्यक्तिगत चेतना और सामाजिक चेतना एकाकार हो जायगी। उस समय दल और व्यक्ति-सत्ता की भिन्नता नहीं रह जायगी। समाज भी पार्टी के साथ एकाकार हो जायगा तथा समाज के अन्दर चेतना के उच्च्त स्तर और निम्न स्तर के बीच आज जो फर्क है वह दूर हो चुका होगा। सामाजिक कार्यों एवं आन्दोलनों में जनता को प्रेरित करने के लिए नेता के रूप में व्यक्ति जो भूमिका आज अदा करते हैं उसी दिन इसका भी अंत हो जायगा। उससे पहले यह होने को नहीं है। यद्यपि जनता को आन्दोलन में प्रेरित करने की यह पद्धति पुरानी यांत्रिक पद्धति की ही परम्परा लिये हुये है फिर भी बुर्जुआ यांत्रिक पद्धति से यह भिन्न है। इसे समझना भी आवश्यक है। आखिर इन दोनों के बीच क्या फर्क है ? वह फर्क यह है कि यहाँ जनता की चेतना का कम-से-कम एक निम्नतम स्तर होता है अर्थात् यहाँ सैद्धांतिक जागृति का वह निम्नतम स्तर रहता है जिसमें किसी को भी गलती-खामी से परे नहीं माना जाता है—यहाँ तक कि नेता को भी नहीं; यह चेतना होती है कि परिस्थिति के अनुसार सब कुछ बदलते हैं। इस मामले में यह समझदारी ही जनता की चेतना का निम्नतम आधारभूत स्तर का कार्य करती है।

नेता के सम्बन्ध में यांत्रिकतापूर्ण धारणा

पार्टी के अन्दर व्यक्ति पूजावाद की सृष्टि करती है तथा चिंतन के स्तर में गिरावट लाती है।

पार्टी के कार्यकर्त्ताओं और जनता को प्रेरित करने के संदर्भ में एक व्यक्ति को नेता के रूप में सामने रखने की यह जो पद्धति है यह आवश्यक जरूर है पर इस पद्धति को व्यवहार में लाने के दौरान अगर सही नीति नहीं अपनाई गई तो इसमें विपत्ति की भी संभावना होती है। सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी जिस प्रकार इसकी आवश्यकता के

पहलू को देखती है उसी प्रकार वह यह भी समझती है कि इसमें खतरा कहाँ है। वह जानती है कि इसे ठीक-ठीक परिचालित नहीं करने से इससे पार्टी के अन्दर यांत्रिकता तथा व्यक्ति पूजावाद का जन्म हो सकता है। इससे भी गम्भीर बात यह है कि इस यांत्रिकता के फल-स्वरूप चिंतन का स्तर नीचा ही रह जाता है एवं अनुन्नत चिंतन तात्कालिक समस्याओं के पर्यालोचना या विश्लेषण करने की योग्यता नहीं रखता। नतीजा यह होता है कि जिस जनता को मुक्त तथा स्वतन्त्र करने के लिए क्रांति की जा रही है—उन्हें प्रेरित किया जा रहा है वहीं एक-दूसरा अंधसंस्कार (preconception) के फन्दे में फँस जायगी जिससे उन्हें पुनः मुक्त करना मुश्किल हो जायगा जैसा कि रूस में हुआ है। स्तालिन को सामने रखते हुए वहाँ विराट समाज-वादी निर्माण कांड संघटित किया गया—सब कुछ किया गया, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर उसी रास्ते से चिंतन के स्तर में गिरावट भी आयी। एक नेता को सामने रखते हुए सारी जनता को प्रेरित करने की पद्धति में जो यांत्रिकता है उसे, कम्युनिस्टों तथा जनसाधारण के सैद्धांतिक स्तर नीचा होने के कारण आखिर तक दूर नहीं किया जा सका। इसीलिए, स्तालिन के उस रूस को भी हम आज संशोधनवाद की ओर जाते देख रहे हैं। ये दोनों ही सच हैं।

व्यक्ति की नेतृत्वकारी भूमिका वहाँ भी थी, यहाँ भी है। फिर चीन की क्रांति में वह भूमिका पहले भी थी, आज भी है और तब तक रहेगी जब तक पार्टी के तत्वावधान में जनसाधारण को एक केन्द्रित सिद्धांत से प्रेरित करने की आवश्यकता रह जायगी। इसे बिना किये कहीं क्रांति हो जायगी ऐसा नहीं दीखता। अतः जहाँ तक जनता को किसी भी क्रांति में सक्रिय बनाने की बात है, उसके लिए आवश्यक पद्धति यही रही है। जो क्रांतिकारी पार्टी इसे करने से मुकरती है, जो व्यक्ति के माध्यम से नेतृत्व को विशिष्ट रूप देने में असमर्थ होती है, जो नेता को जनता की कल्पना (imagination) में नहीं ला पाती,

जनता के सामने सभी नेताओं को एक बराबरी में प्रस्तुत कर देती है वह वस्तुतः क्रांति से ही मतलब नहीं रखती। एक सामूहिक नेतृत्व तो रहेगा ही परन्तु उसके ऊपर भी संघर्ष की एकता के प्रतीक स्वरूप एक नेता का प्रादुर्भाव अनिवार्य है। जिस मुल्क में भी क्रांति संघटित हुई है वहाँ अभ्युत्थान को संगठित तथा परिचालित करने की वास्तविक जरूरत से ही ऐसा हुआ। इसके अभाव में क्रांति के सञ्चालन-काल में नेतृत्व की एकता, पार्टी की आन्तरिक एकता तथा खतरे की घड़ी में आम जनता की एकता की रक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि, उस स्थिति में नेतृत्व सम्बन्धी सही धारणा (appropriate sense of authority) उनमें ठीक-ठीक कार्य नहीं करती है, साथ ही, एक उग्र जनतंत्र (ultra democracy) का झुकाव भी पैदा हो जाता है। परिणामतः, क्रांति अथवा आन्दोलन के सञ्चालन काल में पार्टी दर असल तर्क के एक अखाड़े में परिणत हो जा सकती है एवं उसकी सारी योग्यता नष्ट हो जा सकती है। इसीलिए, कोई भी क्रांतिकारी पार्टी इस तरह की चीजों को निरर्थक नहीं समझती है। तब हाँ, क्रांतिकारी दल इस पद्धति का प्रयोग करने में हमेशा काफी सतर्क रहा करता है।

माओ-त्से-तुंग और लिउ शाव ची के बीच विरोध के प्रसंग में

माओ-त्से-तुंग और लिउ-शाव-ची के बीच विरोध के सम्बन्ध में बहुत-सी ऐसी भी मनगढ़न्त बातें की जा रही हैं कि माओ-त्से-तुंग और लिउ-शाव-ची के बीच नेतृत्व का झगड़ा चल रहा है। बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं की बात तो अलग है ही, परन्तु यह भी सच है कि स्वयं चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व ने कहा है कि सत्ता के सर्वोच्च पद पर आसीन नेता पार्टी द्वारा अपनाया गया सर्वहारा वर्ग का क्रांतिकारी राजनीतिक पथ के विरुद्ध आचरण करते हुए अपने अनजाने में ही धीरे-धीरे पूँजीवाद की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। इसके अलावे, दोनों

विवादग्रस्त पक्षों की बातों की छानबीन करने से भी पता चलता है कि सत्ता के उच्च पद पर आसीन नेताओं में नौकरशाही (व्युरोक्रैटिक) तरीके से संगठन को संचालित करने की बुर्जुआ मनोवृत्ति आ गयी, थी। क्रांति के बाद से ही माओ कहते आ रहे हैं कि—हजारों फूलों को खिलने दो।

लेकिन उनके बार-बार कहने के बावजूद पार्टी के अन्दर इसे अमल में कार्यरूप नहीं दिया जा सका। माओ जो कहते आ रहे थे कि हजारों हजार लोग सोचा करें, मनन किया करें—इससे विभिन्न चिंतन तथा विचारों में खुलकर द्वन्द्व होना तो लाजिमी था ही, पर माओ ने कहा इससे डरो नहीं। इस तरह के मतांतर तथा द्वन्द्व का होना न सिर्फ अनिवार्य है बल्कि यह आवश्यक भी है। वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रांति के संचालन के सिलसिले में भी उनका कहना यही है। चीनी नेतृत्व यह सोच रहा है कि इस प्रक्रिया से पार्टी सभी कार्यकलाप में जनसाधारण के साथ एकाकार हो जा सकेगी। इसी प्रक्रिया से एक विशेष स्तर पर एक विशेष समझदारी (understanding) के आधार पर ही पार्टी नेतृत्व जनसाधारण के साथ एक होता भी है। न तो यह कुछेक अंधविश्वास (preconception) के आधार पर हो सकता है और न कुछ सुविधा का उपभोग करने के लिए अथवा किसी तरह के दबाव में ही पड़कर। फिर इस तरह से जो एकता स्थापित होती है वह स्थायी होती है। यह सब कुछ स्पष्ट कर देने के बावजूद भी ऐसा देखा गया कि पार्टी का नेतृत्व नौकरशाही (ब्यूरोक्रेटिक) तरीके से कार्य कर रहा है; उनके कार्यों में अराजनैतिक आचरण प्रकट हो रहे हैं। नौकरशाह की तरह ही दफ्तर में आना, फाइलों को देखना, आर्डर देना, सूचना और विज्ञप्ति निकालना—बस ! क्रांतिकारियों के लिए हर हमेशा जो यह कहा जाता है कि "राजनैतिक कार्यकर्त्ता जैसा आचरण करो, कामरेडों को निर्देश देना है तो बढ़िया से समझा-बुझा कर दो—हो सके तो उदाहरण के द्वारा

स्पष्ट करके समझा दो कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है—आखिर इसका तात्पर्य क्या है? इन सारी बातों के बावजूद नेताओं के कार्यकलाप और उसके तौर-तरीके में इसकी कोई झलक नजर नहीं आती। इसे तो हमलोग अपनी पार्टी को मिशाल के रूप में लेकर ही समझ सकते हैं। पहले भी मैंने अपनी ही पार्टी के अन्दर नेताओं तथा कार्यकर्त्ताओं की कार्यपद्धति की समालोचना करते हुए "ब्यूरोक्रेटिक स्टाइल" कहकर इसी का जिक्र किया। दैनिक कामकाज के संचालन के मामले में चीनी पार्टी के नेताओं में इधर इस "ब्यूरोक्रेटिक" तौर-तरीके की ओर झुकाव कुछ बढ़ रहा था। इस तरह के नौकरशाही ढंग से जो लोग चलते हैं उनके नाम के साथ अगर 'मार्क्सवादी-लेनिनवादी' नहीं लिखा हुआ हो तथा उनकी जेब में कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता का कार्ड भी न हो तो एक सामान्य बुर्जुआ ब्युरोक्राट से इनमें कोई भी अन्तर नहीं मालूम पड़ेगा। काम-काज में निरंतर क्रांतिकारी चरित्र की झलक नहीं आना, नेता और कार्यकर्त्ता के परस्पर सम्बन्ध में क्रांतिकारी नाता का प्रकट नहीं होना एवं एक तरह की यांत्रिकतापूर्ण मनोभावना से कार्य होना—ये सब जो चीनी पार्टी में उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे थे—इसकी वजह क्या है? वजह यह है कि देश के अन्दर संघर्ष यानी प्रत्यक्ष संघर्ष आज पहले की अवस्था में नहीं रह गया है। आज न तो कोई उसे क्षमता से अपदस्थ करने वाला है और न दमन-पीड़न का ही कोई सवाल है। वर्ग-संघर्ष का रूप पहले से भिन्न हो गया—उसने पहले की अपेक्षा सूक्ष्म रूप ले लिया है। लेकिन मस्तिष्क में संघर्ष के प्रति पुरानी धारणा ही बनी हुई है। एक ओर पार्टी के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं तथा जनमानस में पुराने समाज के प्रति क्रियावादी चिंतन एवं नयी परिस्थिति में नये दाव-पेंच से बुर्जुआ विचारधारा का अनुप्रवेश और दूसरी ओर समाजवाद का आर्थिक और राजनीतिक स्थायित्व बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति-स्वातंत्र्य की धारणा धीरे-धीरे एक 'उपभोग्य सुविधा' (privilege) में परिणत

होने लगता है। फलस्वरूप वर्ग-संघर्ष का संचालन, ऐसी स्थिति में, और भी कठिन हो गया है। पहले तो क्रांति करना ही काफी कठिन प्रतीत होता था परन्तु क्रांति ने अभी जो रूप लिया है वह उससे भी अधिक कठिन है। माओत्सेतुंग की भाषा है—इस पर लेख और एक भाषण भी है। उनका कहना—"पीकिंग ने पहले जो क्रान्ति की है उससे यह बहुत अधिक कठिन है (It is much more difficult than the revolution previously Peking has done)"—बिल्कुल सही है, क्योंकि उन दिनों के संघर्ष में दुश्मन के साथ आमने-सामने रहकर मुकाबला करना होता था—सीधी-सीधी लड़ाई में उससे भेंट होती थी। परन्तु आज की लड़ाई उस दुश्मन से है जो चुपके से ही पार्टी के अन्दर प्रवेश कर जाता है और पार्टी अनजाने में ही उसका शिकार बन जाती है। अपने अन्दर विशेष-विशेष तरह के जो झुकाव पैदा हो जाते हैं उसी के खिलाफ इस संघर्ष को परिचालित करना होता है। शत्रु अगर जाना हुआ है तो उससे लड़ने में उतनी दिक्कत नहीं है। पर जहाँ शत्रु अपने अन्दर अनजाने ही घुसा हुआ हो वहाँ उसे एक-एक कर निकालना और उससे लड़ना कठिन काम हो जाता है। चीन की पार्टी में यह बढ़ता जा रहा था। सोवियत पार्टी के बारे में यह तो स्पष्ट ही है कि उसमें यह झुकाव काफी बढ़ चुका है। जहाँ तक चीन की पार्टी की बात है लोग उसमें मात्र इस झुकाव के बढ़ने की ही बात नहीं कर रहे हैं बल्कि चोटी के नेताओं के विरुद्ध भी उनका यह एक ही तरह का अभियोग है। इसलिए चारों ओर से इसकी समालोचना की जा रही है। यह व्यापक तौर पर चर्चा का विषय है कि किस तरह का व्यवहार या आचरण होना चाहिए। वे हर किसी में कुछ परिवर्त्तन लाना चाह रहे हैं। नतीजा यह होगा कि देशव्यापी इस सांस्कृतिक क्रान्ति के द्वारा वैसे लोग, जो गलती कर चुके हैं परन्तु सच्चे तथा समाजवाद के पक्ष में हैं, अपने को सुधारने का मौका पायेंगे बशर्ते कि वे क्रान्ति के साथ-साथ चलना चाहते हों। परन्तु जो

लोग ऐस
कोशिश
जा सकें
फहमी के
पार्टी-विरो
की यह
नेतृत्व
की नीति
सम्मिलि
विचार
इस
सम्मिलि
खतरा
कर रहे
है। दूस
द्वारा हि
संघर्ष
के निर्ण
में अधिक
कार्यकर्त्ता
में जनस
नहीं बच
मा
इस
पत्र-पत्रि

लोग ऐसा न होते हुए भी इस तरह का दिखावा देकर बच निकलने की कोशिश करेंगे वे इस संघर्ष में स्वयं अपनी भूमिका की कसौटी पर कसे जा सकेंगे जिससे यह साफ जाहिर हो जायगा कि वे वस्तुतः गलत-फहमी के ही कारण गलती कर बैठे हैं अथवा और कुछ ! इस प्रकार पार्टी-विरोधी तथा क्रान्ति-विरोधी तत्त्वों के उच्छेद (elimination) की यह पद्धति बेहतर तथा वैज्ञानिक होगी और इसीलिए, चीन के नेतृत्व ने प्रारम्भ से ही शक्ति का प्रयोग कर विरोधी तत्त्वों को हटाने की नीति नहीं अपनायी है। जनसाधारण को इस आन्दोलन में सम्मिलित करते हुए पूरे देश के पैमाने पर एक स्पष्ट तथा एकबद्ध विचार पैदाकर ही वे लोग इसे करना चाह रहे हैं।

इसके दो मूल कारण हैं . एक तो यह कि इस तरह से जनता को सम्मिलित करते हुए आन्दोलन संचालित करने से गलती करने का खतरा कम रहता है एवं जो लोग गलतफहमी में पड़ कर ऐसा आचरण कर रहे हैं उनके लिए भी अपने को सुधारने का एक मौका मिल जाता है। दूसरा कारण यह है कि इस तरह से व्यापक रूप से जनसाधारण द्वारा हिस्सा लिए जाने तथा परस्पर विरोधी विचारों के बीच तीव्र संघर्ष के बाद जब पार्टी एवं जनसाधारण के सामूहिक अथवा बहुमत के निर्णय से एक मतैक्य बनता है तब वह मतैक्य पहले की तुलना में अधिकतर टिकाऊ होता है एवं अन्ततोगत्वा पार्टी-विरोधी नेता तथा कार्यकर्त्ता के विरुद्ध जो भी आवश्यक कार्रवाई की जाती है उसके बारे में जनसाधारण के मन में किसी प्रकार का संदेह (apprehension) नहीं बच जाता है।

माओत्सेतुंग एवं लिउ-साव-ची के बीच के द्वन्द्व का स्वरूप सैद्धांतिक है

इसलिए आज जबकि यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है तथा बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं में भी कहा जा रहा है कि माओ-त्से-तुंग एवं सांस्कृतिक

क्रांति गुट इसके पहले ही से पार्टी में बहुमत तथा सारी पार्टी के नियन्त्रण की क्षमता प्राप्त कर चुका है तब भी हम यह देख पाते हैं कि लिउ-साव-ची अभी भी राज्य के प्रधान (Head of the state) हैं। वे सर्वोच्च सरकारी पद पर आसीन हैं। बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं में यह जो स्पेकुलेशन (मनगढ़न्त विचार) जारी है कि माओत्सेतुंग एवं लिउ-साव-ची के बीच, नेतृत्व की बागडोर को लेकर विरोध चल रहा है अगर इसमें तथ्य होता तब तो वे बहुत पहले ही लिउ-शाव-ची को बलपूर्वक उठाकर फेंक दिये होते। लेकिन ऐसा उन्होंने नहीं किया। क्यों नहीं किया? पहला कारण तो यह है कि यह नेतृत्व की बागडोर के लिए व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है एवं आज यह निर्विवाद रूप से साफ है कि माओ एवं लिउ-साव-ची के बीच जो द्वन्द्व चल रहा है वह राजनैतिक चरित्र एवं दृष्टिकोण का द्वन्द्व है। दूसरी बात यह है कि चीन की पार्टी किसी को बलपूर्वक हटाने का रास्ता नहीं लेना चाह रही है! फलतः, इसकी भी सम्भावना है कि सैद्धान्तिक द्वन्द्व से लिउ-साव-ची पुनः परिवर्तित होकर सही रास्ते पर आ जायँ। अगर ऐसा हो तो हम पुनः लिउ-साव-ची का नाम सबसे पहली पंक्ति में देख पायेंगे।

सांस्कृतिक क्रान्ति उत्पादन बढ़ाने में ही मदद पहुँचाती है

जैसा कि एक समय माओ-त्से-तुंग के सांस्कृतिक क्रान्ति के कार्य-क्रम के किसी-किसी पहलू के बारे में चाउ-एन-लाई का विवाद चल रहा था—ऐसा लग रहा था कि चाउ-एन-लाई औद्योगिक क्षेत्र में सांस्कृतिक क्रान्ति को ले जाने के विरोधी थे उस वक्त इस चिन्तन के विरुद्ध सैद्धान्तिक क्षेत्र में एक वाद-विवाद का सिलसिला भी चला। धीरे-धीरे इस वाद-विवाद से यह साफ प्रमाणित हुआ कि जो लोग (जिनमें पहले चाउ-एन-लाई भी थे) उत्पादन को हानि पहुँचाने के डर

से सांस्कृतिक क्रान्ति को औद्योगिक क्षेत्र में ले जाना नहीं चाह रहे थे, वे भ्रम में थे। उत्पादन बढ़ाने के लिए हो तो सांस्कृतिक क्रांति है। सांस्कृतिक क्रान्ति उत्पादन में बाधा पहुँचा ही नहीं सकती बल्कि मजदूर वर्ग के अन्दर से बुर्जुआ विचारधारा के प्रभाव को पूरी तरह मिटाना, आगा-पीछा करने (Laisser faire) की मनो-भावना, अर्थ-वाद के प्रभाव से उत्पादन को मुक्त करना एवं उद्योग-धंधे की परि-चालना के सर्वोच्च पद पर बैठे हुए लोगों को भी इन सारे भ्रमपूर्ण विचारों के असर से दूर रखना ही सांस्कृतिक क्रान्ति के कार्य हैं। इसीलिए सांस्कृतिक क्रान्ति का विरोध नहीं किया जा सकता। बाद में चाउ-एन-लाई भी यह बात समझे एवं अपने को सुधार लिया। यदि ऐसा न मान लिया जाय, जैसा कि बहुत लोग सोच भी रहे हैं, कि डरा-धमकाकर, बल-पूर्वक उनके मत में परिवर्त्तन कराया गया है। फिर, बहुत-से लोग ऐसा भी सोच रहे हैं कि वर्त्तमान सांस्कृतिक क्रान्ति के संचालन में चाउ-एन-लाई भले ही माओत्सेतुंग के प्रधान सहयोगी की भूमिका अदा कर रहे हों लेकिन माओ के बाद वे भी क्रुश्चेव के जैसा ही भिन्न रूप अपनायेंगे। क्योंकि, उनके विचार से चाउ-एन-लाई का यह परिवर्त्तन एक चालाकी और धोखा-धड़ी मात्र है। भविष्य में इस तरह की बात अगर होती है तो भी इस रूप से चिन्तन करना मैं ठीक नहीं मानता; क्योंकि, विचार-विश्लेषण के क्षेत्र में इस तरह की पद्धति अपनाये चलने का अर्थ होगा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद त्याग कर बुर्जुआ स्पेकुलेशन (Speculation) की ओर बहकना और इस पद्धति से चलते रहने से एक पर एक स्पेकुलेशन का झुकाव बढ़ता ही जायगा। इसलिये मेरी समझ से इस ढंग से सोचना बहुत ही खतरनाक है क्योंकि वह वास्तविक तथा घटना से परे आत्मवादी (Subjec-tive) एवं काल्पनिक चीज होगी। किसी विषय का विचार करने का यह सही तरीका नहीं माना जा सकता। वास्तविकता के सन्दर्भ पर ही घटनाओं का विचार करना चाहिए। आखिर चाउ-एन-

लाई भी एक क्रान्तिकारी परम्परा रखते हैं एवं अभी वे सांस्कृतिक क्रांति के समर्थन में कार्य कर रहे हैं। एक समय बुर्जुआ सट्टाबाजों (Speculator) की सूची में चाउ-एन-लाई का नाम बहुत ही पीछे पड़ गया था। फिर उन्हीं की सूची में पुनः वे सामने आ गये हैं। माओ के बाद प्रथम पंक्ति के दो व्यक्तियों में उनका नाम आता है—एक लिन-पिआओ; दूसरे चाउ एन लाई। इस तरह से नाम के सामने आने तथा पीछे जाने के सवाल को लेकर बुर्जुआ दुनिया में काफी सट्टेबाजी (Speculation) चल रही है पर स्वयं चीन इसके लिए चिन्ताग्रस्त नहीं है। इसीलिए, भविष्य में यदि ऐसा भी देखा जाय कि माओत्से-तुंग के साथ लिउ-शाव-ची की पूरी एकता कायम हो गयी है, जिसकी सम्भावना के बारे में मैं पहले ही बोल चुका हूँ तो आश्चर्य की बात नहीं माननी चाहिए। एक विरोध चल रहा है; उसमें यान्त्रिकता का प्रभाव चाहे जितना भी क्यों न हो यह भूलना नहीं होगा कि वह विरोध यथार्थ है। इसीलिए वे लोग इस संग्राम को बन्द करना नहीं चाह रहे हैं एवं यही वजह है कि आज तक गवर्नमेंट पार्टी की ओर से आज भी उनका नाम लेकर उनके विरुद्ध समालोचना करने नहीं दिया जा रहा है। साथ ही, इस विराट सांस्कृतिक क्रान्ति के उथल-पुथल के अन्दर भी उनकी सुरक्षा (Protection) की व्यवस्था है। इसीलिए मैं सोचता हूँ कि राजनैतिक लाईन की प्रयोग-पद्धति एवं दृष्टिकोण के विषय में कोई वास्तविक गलतफहमी (Confusion) से ही लिउ के साथ चल रहे वर्त्तमान विरोध की उत्पत्ति हुई होगी।

मूल आदर्श के प्रश्न पर यदि विरोध न हो तो ऐक्य कायम होने की सम्भावना अधिक है

यह गलतफहमी दो तरह की हो सकती है। एक तो यह कि मानो पार्टी की मूल राजनैतिक लाईन एवं दृष्टिकोण के साथ कोई मतभेद नहीं है परन्तु माओ-त्से-तुंग के नेतृत्व में राजनैतिक लाईन को जिस प्रयोग-पद्धति से अमल में लायी जा रही है उसे लिउ-साव-ची गलत मान रहे हैं। दूसरी बात यह हो सकती है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सोवियत संशोधनवादी दृष्टिकोण के जिन विषयों को लेकर संघर्ष चलाया जा रहा है उक्त विषयों के बारे में उनका मतान्तर न रहने पर भी इस संग्राम के संचालन के तौर-तरीके के सम्बन्ध में वे माओत्से तुंग के दृष्टिकोण (approach) के साथ एकमत नहीं हो पा रहे हैं। सम्भवतः इसीलिए, उन्हें क्रुश्चेव, मडार्न क्रुश्चेव आदि कहा भी जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि संशोधनवाद की ओर उनका झुकाव है। लिउ-साव-ची के साथ द्वन्द्व के मामले में माओ के चिन्तन से परिचालित होकर जितने लेख, सम्पादकीय प्रबंध आदि प्रकाशित हो रहे हैं तथा पार्टी-नेतृत्व जिस तरीके से सारे विषय को सामने ला रहा है उससे लगता है कि शायद इसी क्षेत्र में गलतफहमी की जड़ होगी। फलस्वरूप, एक संघर्ष चल रहा है। लिउ के साथ विरोध का अगर यही चरित्र है तो शंका की बात नहीं है। वे अपने तर्क के साथ अपनी बात को रख रहे हैं फिर माओ-त्से-तुंग के नेतृत्व में पार्टी उसके विरोधी तर्क के साथ अपने वक्तव्य को रख रही है। अगर यांत्रिकता के प्रभाव में पड़कर इस द्वन्द्व का मूल उद्देश्य और विषय ही गड़बड़ा नहीं गया तो इन विरोधों के मार्फत आखिर तक स्पष्टता (clarity) आयेगी एवं ऐक्य कायम होकर रहेगा।

समाजवादी व्यवस्था में एक नये ढंग का अर्थवाद मजदूर वर्ग के अन्दर नये सिरे से बुर्जुआ व्यक्ति-अधिकार का प्रश्न ला दे सकता है

लेकिन यदि भ्रम दूसरी तरह का हो तो वह खतरनाक होगा। अर्थात् यदि पार्टी के मूल राजनैतिक लाइन एवं दृष्टिकोण तथा अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में चल रहे सैद्धान्तिक संघर्ष के विषय में पार्टी के वक्तव्यों पर ही मतभेद हो तो इसे बुनियादी माना जायगा। तदुपरान्त ऐसा लगता है कि समाजवादी व्यवस्था में एक नये रूप का अर्थवाद तथा material incentive यानी वस्तुगत प्रेरणा की नीति के सम्बन्ध में भी बुनियादी मतान्तर मौजूद है। समाजवादी आर्थिक निर्माण कार्य के युग में एक नये रूप का अर्थवाद और material incentive तथा फायदे (benefit) की ओर आम मजदूरों का एक झुकाव पैदा होता रहता है। अर्थात्, साधारण स्तर के मजदूरों में चेतना इस तरह की रहती है कि मानो समाजवाद का मतलब है अधिक से अधिक फायदा मिलना! इसके फलस्वरूप उत्पादन बढ़ाने के लिये अगर मजदूरों की ओर से आग्रह होता है तो वह केवल इसलिए कि उन्हें उससे ज्यादा से ज्यादा फायदा मिल सकेगा। अन्यथा वे समझते हैं, समाजवाद का होना या उत्पादन की बृद्धि ये सब कुछ उनके लिए निरर्थक हैं। समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ सुविधाएँ यों ही बढ़ेंगी एवं मजदूरों की हालत में सुधार होता जायगा। किन्तु, पैदावार बढ़ाने के प्रश्न पर मजदूर समाज तथा साधारण

मनुष्यों की मानसिक बनावट तथा चिन्तन की पद्धति इस प्रकार होने से काम नहीं चल सकता। इससे मजदूर वर्ग के अन्दर व्यक्तिगत अवसरवादी झुकाव पैदा होते हैं। इसीलिए मजदूर वर्ग की मानसिक बनावट को इस तरह गठित करना तथा उसकी चिन्तन-पद्धति को इस रूप में नियोजित करना चाहिये कि देश की उन्नति तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति की प्रगति के हित में ही उन्होंने पैदावार बढ़ाने के कार्य में अपने को उत्सर्ग कर दिया है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रांति की प्रगति के प्रश्न के साथ देश की प्रगति तथा विकाश का प्रश्न घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। और, इन दोनों के पारस्परिक प्रगति के प्रश्न पर ही व्यक्ति की वस्तुगत (material) तथा मानसिक (spiritual) उन्नति का प्रश्न मूलतः निर्भर है। मजदूर समाज के मानसिक गठन इसी तरह गठित होने से समाजवादी निर्माण कार्य में हाथ बटाने के समय उनमें अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने की भावना कार्य करेगी।

इससे काम-काज में ढीला-ढाला तरीका नहीं आ सकता। वर्ना एक ओर तो काम-काज के मामले में 'जैसा चले चलने दो' की ढीली भावना काम करती है और दूसरी ओर व्यक्तिगत सुविधा प्राप्त करने के लिये व्यक्तिगत मांग अनुचित ढंग से बढ़ती ही जाती है। इस सम्बन्ध में पूरी चेतना कि समाजवादी समाज में मजदूर वर्ग ही मूल नियंत्रक शक्ति है न रहने की वजह से बुर्जुआ-अधिकार सम्बन्धी पुराना प्रश्न फिर नये सिरे से अपना सिर उठा सकता है। नये नाराओं की आड़ में फिर वह प्रश्न नये सिरे से उठ खड़ा होता है। स्वातंत्र्य एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य की धारणा एक तरह की व्यक्तिगत सुविधा में परिणत हो जाते हैं।

'मेटिरियल इसेन्टिव' की संशोधनवादी नीति समाजवाद को खतरे में डालेगी

समाजवाद के बारे में छिछला ज्ञान होने के कारण तथा संशोधनवादियों के प्रभाव के फलस्वरूप समाजवादियों का एक दल यहाँ मतलब है साम्यवादियों से) ऐसा सोचता है कि येन-केन-प्रकारेण उत्पादन में वृद्धि लाना ही समाजवादी व्यवस्था का मूल लक्ष्य है। समाजवादी व्यवस्था में निहित अन्तर्द्वन्द तथा समाजवादी अर्थनीति के मूल नियम के अध्ययन करने की फिक्र किये बगैर ही ये तथाकथित मार्क्सवादी लोग इस पक्ष में हैं कि उत्पादन बढ़ाने के लिये, अगर जरूरी हो तो, पूँजीवादी समाज की मेटिरियल इन्सेन्टिव (material incentive) की नीति को भी अमल में प्रयोग किया जाय। इससे हो सकता है कि तत्काल आनुपातिक तौर पर उत्पादन की वृद्धि हो। परन्तु, यह चन्द दिनों में ही समाजवादी अर्थ-व्यवस्था तथा समाजवाद के लिये खतरा पैदा करेगा। साथ ही, इसके परिणाम स्वरूप उत्पादन-व्यवस्था के सभी स्तर पर स्पेकुलेशन (Speculation) का झुकाव बढ़ता रहता है जो आगे चलकर उत्पादन व्यवस्था में अराजकता (anarchy) पैदा करता है। चूँकि, अन्त तक उत्पादन में प्रचुरता (abundance in production) लाना समाजवाद का उद्देश्य है, इसलिए इन लोगों की राय में व्यक्तिगत तौर पर अधिकतर (material तथा cultural benefit. (वस्तुगत तथा सांस्कृतिक फायदे) पाने के उद्देश्य से ही समाजवाद में मजदूर वर्ग उत्पादन बढ़ाता है। अतः इन लोगों की राय में पूँजीवादी मुल्कों की तुलना में अधिकतर material benefit न मिलने से मेहनतकश जन-साधारण के लिये समाजवाद का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। समाजवाद के बारे में इस गजब की समझदारी की आड़ में समाज में

नये सिरे से बुर्जुआ स्वतंत्रता तथा अधिकार का प्रश्न उठ खड़ा होता है। इससे मजदूरों में सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी आत्मसमर्पण (Proletarian revolutionary dedication) की भावना नहीं आ पाती है—नहीं आ सकती है।

समाजवादी व्यवस्था में अर्थवाद सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्ति-स्वार्थ के समन्वय के रास्ते रुकावट डालता है

क्रांति के बाद मजदूरों में यह जो अर्थवाद नये सिरे से दिखने लगता है इसकी विशेषता क्रांति के पहले के अर्थवाद से कुछ भिन्न होती है। क्रांति के पहले के युग के अर्थवाद मजदूर वर्ग को सर्वहारा क्रांतिकारी राजनीति से दूर ले जाता है तथा आम मेहनतकश जनता एवं मजदूर वर्ग के बीच फूट पैदा करने तथा क्रांतिकारी आदर्श के बारे में गलतफहमी पैदा करने के लिये बुर्जुआ एवं पेटी-बुर्जुआ-पार्टियों को मौका देता है। वह मजदूरों की राजनैतिक चेतना बढ़ाने तथा सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी राजनीति को सामने लाने में बाधक होता है। क्रांति के बाद के युग के अर्थवाद मजदूरों में अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा क्रांति के हित में, क्रांतिकारी कार्यकर्त्ता बनने के अर्थ से, समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व निभाने के अर्थ से, अपनी स्वाधीनता के विकास और प्रगति के लिये ही जो पूर्ण समर्पण (Complete dedication) एवं त्याग (Sacrifice) चाहिये उसकी मांग एवं आवश्यकता को समझाने में बाधक का काम करता है। यह तो है ही कि नेतृत्व की ओर से यदि कोई खतरनाक गलती या त्रुटी न हो तो समाजवादी व्यवस्था में उसके अन्तर्निहित (Objective Law) वस्तुगत नियम के अनुसार ही आर्थिक क्षेत्र में प्रगति होकर रहेगी। लेकिन उसकी

प्रगति की रफ्तार को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने के लिये मेहनतकश जनता में जो सांस्कृतिक तथा राजनैतिक प्रेरणा पैदा करना जरूरी है वह (इससे) नहीं हो सकेगा। समाजवादी व्यवस्था में यह अर्थवाद सामाजिक हित के साथ व्यक्ति के हित का समन्वय लाने में भी एक बड़ी बाधा होती है। समाजवादी व्यवस्था में यह अर्थवाद व्यक्तिगत अवसरवादी मनोभावना जिसे मैंने समाजवादी व्यक्तिवाद (Socialist individualism) कहा,—को भी बढ़ाने में मदद पहुँचाता है। इसके खिलाफ लड़ना भी चीन की सांस्कृतिक क्रांति के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। क्योंकि अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये उसे 'किसान कम्यून' से 'मजदूर कम्यून' की ओर बढ़ना पड़ेगा। उस हालत में मजदूरों के अन्दर इस प्रकार नये ढंग के अवसरवादी झुकाव जो कि औद्योगिक इलाकों में व्यक्ति मजदूर के परिवार के आधार पर मजदूरों में एक नये किस्म की व्यक्तिवादी भावना का जन्म देगा, मजदूर कम्यून बनाने के रास्ते जबर्दस्त अड़चन पैदा करेगा। चीनी समाज के आर्थिक पहलू पर होनेवाले विकास के वर्तमान स्तर पर यह भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य (Point) है।

व्यक्तिवाद का प्रभाव तीव्र होने से सैद्धान्तिक विरोध जटिल हो उठेगा

औद्योगिक इलाकों में सांस्कृतिक क्रांति को फैलाने के विषय में शुरू-शुरू में चाउ एन लाई के मन में जैसी दुविधा थी उससे निःसन्देह यही प्रमाणित होता है कि चाहे अप्रत्यक्ष रूप में ही क्यों न हो, उन पर अर्थवाद का प्रभाव थोड़ा बहुत काम कर रहा था। आखिरकार चाउ एन लाई को इस गलतफहमी के स्वरूप को समझाया गया एवं वे समझ सके कि औद्योगिक विकास की गति को निर्बाध बनाये रखने के लिये ही औद्योगिक इलाकों में सांस्कृतिक क्रांति की जरूरत है।

नाम लेकर समालोचना न किये जाने का फायदा भी यही है। स्पष्टतः समझ में आ रहा है कि चिन्तन के क्षेत्र में आज तक लिउ शाव ची के साथ पूरी एकता कायम नहीं हो सकी। ऐसा भी हो सकता है कि आखिर तक भी यह एकता हासिल नहीं की जा सके। ऐसी हालत में, यदि अन्त तक माओ-त्से-तुंग की राजनैतिक लाईन को ही विजय होती है तो उनका (लिउ का—अनुवादक) पतन होगा। और, अगर आखिर तक ऐक्य कायम हो सका तो बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाओं में नामों की सूची जो बदलती रही है उसमें पुनः एक बार लिउ का नाम पहली पंक्ति में आ जायगा।

आज जो लोग ऐसा कह कर कि 'माओ एवं लिउ के बीच नेतृत्व की क्षमता के लिये विरोध चल रहा है' इतना बुझौअल (स्पेकुलेशन) कर रहे हैं वे लोग उस वक्त क्या कहेंगे? इतने महत्त्व के इस ऐतिहासिक संग्राम में वे लोग व्यक्तिगत नेतृत्व के झगड़े के अलावे और कुछ नहीं देख पाते हैं। यद्यपि यह सही है कि इस विरोध में दोनों पक्ष के आचरण में ही कुछ यांत्रिकता प्रकट हो सकती है एवं होती भी होगी। चूँकि साधारण पंक्ति के कम्यूनिस्ट एवं जन-साधारण के चिन्तन का स्तर नीचा है इसलिए, पूरी तरह व्यक्तिवाद के प्रभाव से मुक्त होकर संग्राम को संचालित करने के लिये जिस स्तर (स्टैन्डर्ड) की आवश्यकता है, मेरे ख्याल से, वह भी नहीं ही होगा। यह इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इसमें व्यक्तिवाद का बीज निहित है। फलस्वरूप इसके द्वारा माओ त्से तुंग एवं लिउ शाव ची दोनों ही कुछ हद तक प्रभावित हो सकते हैं। व्यक्तिवाद एवं व्यक्तिपूजा का झुकाव सैद्धान्तिक संघर्ष वे-वजह जटिलता पैदा करेगा तथा व्यक्तिवाद की ओर इस झुकाव की तीव्रता पर ही सैद्धान्तिक संघर्ष का नतीजा भी बहुत हद तक निर्भर रहेगा। आज जो द्वन्द्व या आंदोलन चल रहा है, इससे जहाँ अधिकतर आसानी से तथा जल्द एकता कायम होना सम्भव

था, व्यक्तिपूजा का झुकाव जोरदार रहने से यह नहीं हो पायगा। सिर्फ इतना ही नहीं बल्कि आखिर तक एकता के बदले गहरी दरार भी पैदा हो जा सकती है। व्यक्तिवाद का प्रभाव अधिक होने से यह सब कुछ सम्भव है। जो भी हो यह नेतृत्व की बागडोर के लिये होनेवाली है। यह द्वन्द्व दो अलग-अलग दृष्टिकोण—दो विचार है।

हो सकता है इस द्वन्द्व में ऐसा भी हुआ हो कि सारे राष्ट्र के सामने माओ-त्से-तुंग के इतने बड़े नायक (हिरो) हो जाने से उसके विरुद्ध किसी-किसी के मन में व्यक्तिगत 'अहं की भावना' (ego) जोर पकड़ ली हो। ऐसा होना बिल्कुल स्वाभाविक है। जो लोग शुरू-शुरू में माओ-त्से-तुंग को नेता मान कर ही बड़े हुए हैं, एक हद तक बड़े होने के बाद हो सकता है उनके अन्दर भी व्यक्तिवाद के लक्षण देखे जाने लगे और वे भी सोचने लगें कि वे किस मानि में कम हैं! 'व्यक्तिपूजा-वाद के खिलाफ लड़ाई' के आड़ में ऐसे लोग असल में चाहते हैं कि अब उनका भी कुछ नाम हो। फिर यह भी खतरा है कि नेतृत्व के बारे में आम कम्यूनिस्टों तथा जन-साधारण की यांत्रिक धारण को भले ही तात्तकालिक तौर पर, बढ़ावा देते हुए स्वयं माओ-त्से-तुंग भी कहीं न इसका शिकार (victim) हो जाय। लेकिन यहाँ ये सब विचारनीय नहीं हैं। सिर्फ यह याद रखना होगा कि अगर ये सब हो तो जटिलता बढ़ेगी। जिस समस्या का समाधान आसान था वह पेचींदी बन जायगी जिसका नतीजा यह हो सकता है कि और भी बहुतों के सम्बन्ध सुत्रों में दरार पैदा हो सकते हैं। जिस तरह विभिन्न स्तरों के बहुत लोग निकल गये हैं अथवा निकाल दिये गये हैं उसी तरह, हो सकता है, लिउ शाव ची या दूसरा कोई ग्रुप निकाल बाहर कर दिया गया। पार्टी के अन्दर पुनः एक बड़े पैमाने का 'पर्ज' (Purge) हुआ। फिर यह भी हो सकता है कि इतने कांड के बाद भी पार्टी मूलतः बहुमत को तर्क द्वारा समझा कर (Persuade) अपनी राय में ला सकी और एक मामूली तरह का 'पर्ज' द्वारा ही इतनी बड़ी समस्या

का सफलतापूर्वक समाधान कर ली। अगर ऐसा ही हो—जिसकी सम्भावना ही अधिक दीख रही है। तो आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिये। अपनायी गयी पद्धति (method) में ही उसका आभास दीख रहा है। सारे देश की जनता को शामिल करते हुए जिस कायदे से संग्राम का संचालन किया जा रहा है उसी में यह सम्भावना निहित है।

लेखों में अभिव्यक्ति की त्रुटियाँ

यह सच है कि चीन से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में, जो सारे लेख छप रहे हैं उनमें तर्क पेश करने की कला (approach) की कुछ-कुछ त्रुटियाँ नजर आती हैं। इस पर चर्चा करने से पहले इस बात पर गौर करना जरूरी है कि जो लोग ये सब लेख लिखते हैं उन सभी लोगों का सैद्धान्तिक विकास का स्तर एक नहीं है। उनके अन्दर तफर्का है और यह बिल्कुल लाजिमी है। क्योंकि श्रम का बंटवारा है। ऐसी हालत में वस्तुतः होता क्या है ? मान लीजिए कि एक ने कुछ लिखा। पार्टी के चिन्तन के आधार पर ही उसने लिखा पर अपनी समझ के मुताबिक एक तरह से उन्होंने उस लेख को तैयार किया। बाद में हो सकता है किसी दूसरे के द्वारा उस लेख में अभिव्यक्ति की त्रुटि अथवा कोई मूल प्वायेंट की ही गड़बड़ी पायी जाती है। किन्तु तब तक वह लेख छप कर प्रकाशित हो चुकी है। उस हालत में बाहर के लोग कह ही सकते हैं कि (त्रुटिपूर्ण) वह चिन्तन ही पार्टी का चिन्तन है। ऐसा तो होता ही है। हमने भी तो अपने अन्दर कभी-कभी ऐसा होते पाया है। यह मुख्यतः इसलिये होता है कि जो लोग लिखते हैं उनमें चिन्तन का सर्वोच्च स्तर भी उस कम-से-कम सीमा तक उन्नत नहीं हुआ जहाँ तक उन्नत होने पर ही अभिव्यक्ति की खामी दूर हो सकती है। यहाँ और भी एक बात का ख्याल करना जरूरी है; वह यह कि कम-से-कम जरूरी सर्वोच्च स्तर हासिल कर लेने के बावजूद जो लोग लिखते हैं

वे पूर्णतः एक स्तर के नहीं हो जाते हैं। जहाँ एक का लेख बहुत साफ और सही-सही (precise) बनता है वहाँ दूसरा कोई उसी विषय पर लिखने जायगा तो, हो सकता है, गड़बड़ लिख बैठेगा। अक्सरहा क्या होता है? मान लीजिए चीन की अमुक पत्रिका के सम्पादक-मण्डली या सम्पादक-मण्डली के किसी सदस्य ने एक लेख लिखा। तो क्या सम्पादक-मण्डली के सदस्य सैद्धान्तिक चेतना के क्षेत्र में सब मार्क्स-एंगेल्स, लेनिन-स्तालिन, माओत्से तुङ्ग के दर्जे के होते हैं? क्या ऐसा होना सम्भव है? नहीं। यह इतना आसान नहीं है। तब हाँ, चिन्तन के क्षेत्र में एक आवश्यक निम्नतम स्तर तक तो लोग पहुँचे ही होंगे। और यह भी हमलोग कह सकते हैं कि उनका वह निम्नतम स्तर हमलोगों के निम्नतम स्तर से ऊँचा ही है। फिर भी वक्तव्य प्रस्तुत करने में बहुत तरह की त्रुटियाँ हो सकती हैं—ठोस वैज्ञानिक तर्क (Precise scientific approach) का अभाव रह सकता है। इस प्रसंग में हमें एक और बात पर भी ख्याल करना चाहिये। वह यह कि लिखने के समय लेखक तरह-तरह के झुकाव के वश में हो जाता है; जैसा कि व्यंग करना, विरोधी को अकारण कुछ विकृत कर पेश करना, कड़े-कड़े शब्दों के इस्तेमाल पर जोर देना आदि। लेखक इन झुकावों के शिकार (victim) हो जाते हैं। फलस्वरूप प्रायः उनके लेख क्रांति, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं तथा जिनके विरुद्ध लिखा जा रहा है उनके समर्थकों के मानसिक बनावट को दृष्टिगत रखते हुए उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये जरूरत के मुताबिक नहीं होते हैं। इससे नुकसानी होती है एवं हुई भी है। उद्देश्य को ठीक-ठीक दृष्टिगत रखते हुए कब कहाँ किस बात पर कितना बल (emphasis) देना चाहिये, कहाँ कितना संयम बरतना चाहिए और उसके लिये आवेश (emotion) को किस हद तक नियन्त्रित करना जरूरी है ये सब व्याख्या करके संयमित लेख वही लिख सकता है जो अपना आवेग (emotion) पर नियन्त्रण की पूरी क्षमता रखता हो। सम्पादक मण्डली के सदस्यगण, जो लेखों की

रचना करते हैं, इस स्तर के ही हैं और यदि ऐसे न हों तो सारे काम चौपट हो जायेंगे—ऐसा सोचना ठीक नहीं होगा।

सांस्कृतिक क्रांति के सैद्धांतिक कमजोरी के कुछ और पहलू

सांस्कृतिक क्रांति के सैद्धान्तिक पहलू पर गौर करने से कुछ कमजोरियाँ नजर आती हैं जिनकी हम एक बिरादराना पार्टी के नाते, समालोचना करेंगे; क्योंकि सैद्धान्तिक क्षेत्र की कमजोरी तथा पार्टी के चिन्तन और क्रिया में यांत्रिकता का जो कुप्रभाव काम कर रहा है उसे अगर दूर नहीं किया जा सका तो भविष्य में खतरे की शंका रह ही जायगी। जैसा कि, सभी सच्चे कम्युनिस्ट को यह मालूम है कि लगातार सुधारवादी तरीकों को पूर्ण अमल करने के फलस्वरूप एक समाजिक समाज में भी पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो जा सकती है। इस सम्बन्ध में चीन का पत्र-पत्रिकाओं में जो वक्तव्य प्रकाशित हुए हैं उनमें इस बात का जिक्र है कि इस तरह का काया पलट क्रमिक परिवर्तन के रास्ते से हो सकता है। उन्होंने कहा कि सोवियत युनियन में समाजवाद से पीछे की ओर जाकर पूँजीवाद की पुनर्स्थापना क्रमिक परिवर्तन के पथ से ही हो सकती है। हमारी राय से इस तरह कहना गलत है क्योंकि समाजवाद से पूँजीवाद में पुनः-संक्रमण भी एक आमूल परिवर्तन है। यह याद रखना चाहिए कि समाजवाद और पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के बीच एक गुणात्मक छलांग (break) है एवं इस अर्थ में यह भी एक आमूल परिवर्तन है। परन्तु चूँकि हमलोग 'क्रान्ति' शब्द का इस्तेमाल आम तौर पर विकास और प्रगति के अर्थ में करते हैं—खास तौर पर समाज विज्ञान के मामले में तो यह बात और भी सच है—इसलिए यहाँ (इस तरह के प्रतिगामी आमूल परिवर्तन के बारे में) हम 'क्रांति' शब्द का

व्यवहार नहीं करेंगे। लेकिन बुनियादी परिवर्तन के लेहाज से यह भी एक सर्वाङ्गीण तथा आकस्मिक (abrupt) परिवर्तन ही है। एक चरम बिन्दु तक पहुँच कर ही यह आकस्मिक गुणात्मक परिवर्तन होता है। हो सकता है कि सामाजिक मामले में हम उस चरम बिन्दु पर पहुँचने के क्षण को पकड़ नहीं पाते। लेकिन केवल इसलिये कि हम उसे पकड़ नहीं पाते, यह साबित नहीं हो जाता कि एक खास रूप और गुण की कोई वस्तु मात्र क्रमिक परिवर्तन द्वारा ही आमूल काया-पलट कर दूसरी किसी वस्तु में परिणत हो सकती है। हर जगह इस तरह के परिवर्तन में यह नियम निरपवाद रूप से काम करेगा कि क्रमिक परिवर्तन होते-होते आखिरकार एक क्रान्तिकारी यानी आकस्मिक काया-पलट होगा। इसोलिये चूँकि यहाँ 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग सही नहीं जँचता, वे लोग इसे 'क्रमिक परिवर्तन के फलस्वरूप प्रति-क्रांतिकारी काया-पलट, कह सकते थे। तब तो इस बात को लेकर इतनी गलतफहमी पैदा नहीं हो पाती। जाहिर है कि इस मामले में नेतृत्व के चिन्तन की स्वच्छता प्रकट नहीं हुयी है। अगर यह खामी पार्टी-नेतृत्व की सर्वोच्च कमिटी द्वारा प्रकाशित लेख में नहीं पायी गई होती तो हम यह मान सकते थे कि जिन लोगों ने लिखा है वे लिखने के समय शब्द चुनने के मामले में काफी सावधानी से काम नहीं ले पाने से ही ऐसा हुआ होगा। हो सकता है एक और गलतफहमी (Confusion) इसमें काम किया होगा। यह जरूरी नहीं है कि हमेशा संघर्ष के जरिये ही इस तरह का परिवर्तन संघटित होगा। धीरे-धीरे मार्क्सवादी चिन्तन और आचरण को दूषित करते हुए भी समाज को इस हालत में ले जाया जा सकता है कि जब मार्क्सवाद-लेनिन-वाद उसकी क्रांतिकारी आत्मा को ही खो बैठे और मात्र कुछ शब्दों में परिणत हो जाय एवं लोग दर असल पूँजीवाद को पुनर्स्थापित कर डालें। समूचे मजदूर वर्ग ने चिन्तन तथा संस्कृति के क्षेत्र में अपने अनुन्नत स्तर के चलते इस परिवर्तन को मानो समझ ही नहीं पाया और आखिर

तक वे प्रतिरोध भी नहीं कर सके। हालाँकि यह एकाएक होने को नहीं है। पर एक लम्बे अर्से से होते रहने से आखिर तक इस तरह की घटना का होना नामुमकिन भी नहीं है। लेकिन ऐसी हालत में भी, चूँकि संघर्ष के जरिये परिवर्तन नहीं आया इसलिए इसे उपरोक्त तरीके से कहना गलत होगा। समाजवाद से इस प्रकार क्रमिक परिवर्तन के रास्ते पूँजीवाद की पुनर्स्थापना में भी लगातार (Continutity) के अन्दर कहीं एक जगह रोक (break) अवश्य है।

नेतृत्व के सम्बन्ध में आज भी यांत्रिक धारणा मौजूद है

चीनी क्रांति में महान नेता के रूप में माओत्से-तुंग का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। क्लासिकल बुर्जुआ विप्लव यानी अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवादी क्रांति के युग में भी विभिन्न देशों में क्रांति को संगठित करने में खास-खास महान नेताओं के आविर्भाव हुए हैं। फिर समाजवादी क्रांति के युग में भी हमने देखा कि जहाँ-कहीं भी मजदूर वर्ग की अगुआई में क्रांति सफलीभूत हुई है वहीं इस तरह के महान नेता का भी उदय हुआ है। लेकिन, बुर्जुआ क्रांति और समाजवादी क्रांति इन दोनों तरह की क्रांतियों में ही एक महान नेता द्वारा जो विशेष नेतृत्वकारी भूमिका अदा करने की ऐतिहासिक जरूरत उत्पन्न होती है उनके बुनियादी स्वरूप एक दूसरे से भिन्न हैं। इस अन्तर को अच्छी तरह समझना होगा। चूँकि बुर्जुआ क्रांति उत्पादन पर व्यक्तिगत मालकियत तथा आधिपत्य के आधार पर एक मानी में व्यक्तिवाद तथा व्यक्तित्व के विकास की क्रांति थी इसलिए बुर्जुआ जनतन्त्र या औपचारिक (Formal) जनतन्त्र के बाहरी तौर-तरीकों के बावजूद उस युग के क्रांतियों में नेतृत्व मूलतः व्यक्ति-नेतृत्व ही रहे हैं। उस व्यक्ति-नेतृत्व ने मानो कुछ हद तक बाहर से यानी ऊपर से समूह

को संचालित किया। लेकिन चूँकि समाजवादी क्रांति व्यक्तिगत स्वामित्व, आधिपत्य तथा अधिकार की जगह सामाजिक मालकियत तथा मजदूर वर्ग की अगुआई में जनता का सामूहिक आधिपत्य कायम करने की क्रांति है, इसलिए समाजवादी क्रांति में मजदूर-वर्ग के नेतृत्व की धारणा भी सामूहिक नेतृत्व की धारणा के रूप में विकसित हुआ है। इसीलिए मजदूर वर्ग की पार्टी में तमाम सदस्यों के चिन्तन तथा विचारों के द्वन्द्व-समन्वय से पार्टी के सामूहिक नेतृत्व का गठन होता है एवं एक नेता के माध्यम से इस सामूहिक नेतृत्व का व्यक्तिकरण (Personification) होता है। इस युग में समाजवादी आंदोलन के व्यक्ति-नेतृत्व की यही खास विशेषता है। इसीलिए चीनी पार्टी द्वारा माओ-त्से-तुंग को नेता के रूप में पार्टी के दूसरे नेताओं, कार्यकर्त्ताओं और जनता पर लाद दिये जाने की बात यह नहीं है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि चीनी क्रान्ति के नेतृत्व के इस विशिष्टकृत रूप (concretised form) के बारे में चीन के तथा दुनिया के दूसरे मुल्कों के अधिकांश कम्युनिस्टों के दिमाग में जो धारणा बनी हुयी है वह यांत्रिक ख्यालात (mechanical thought process) से दूषित है। यह सच है कि सामूहिक नेतृत्व के इस विशिष्टकृत रूप के सैद्धांतिक पहलू को आम जनता आज ही बढ़िया तरह से समझ नहीं पायगी। मौजूदा स्थिति में उनके अन्दर कुछ हद तक व्यक्ति नेतृत्व के प्रति मोह तथा यांत्रिक झुकाव (mechanical trend) काम करेगा ही। लेकिन सांस्कृतिक क्रान्ति के सैद्धांतिक पहलू पर कमजोरी का प्वायेंट यह है कि जो नेतागण 'माओ के चिन्तन' (Mao's thought) का रट लगा रहे हैं वे भी अपने इस कार्य का सही सैद्धांतिक व्याख्या न तो खुद के लिए और न संसार के लिए ही दे सके हैं। इधर माओ-त्से-तुंग के नेतृत्व को लेकर जब कभी भी व्यक्तिपूजा की शिकायत हुयी है इन लोगों ने इस तरह की सफाई दी—"जैसा कि लड़ाई में सेनापति की जरूरत होती है वैसा ही हर

संघर्ष में एक नेता की भी जरूरत होती है। इसमें व्यक्तिपूजा की बात क्या है ?" लेकिन इस तरह से कहना सैद्धान्तिक तौर पर ठीक नहीं है। सोवियत युनियन में संशोधनवादी नेतृत्व के खिलाफ जो क्रान्तिकारी (Splinter group) कार्यरत है उसका मूल राजनैतिक दस्तावेज (Document) फिलहाल पेरिस में प्रकाशित हुआ है, जिसमें इस प्रश्न का जवाब देते हुए कहा गया है, "हाँ, हम भी माओ-त्से-तुङ्ग को मानते हैं और होक्सा को मानते हैं। इन दो सेनापतियों के अधीन हम संगठित हैं—क्योंकि लड़ाई में सेनापति की जरूरत है। हम लड़ाई चाहते हैं, और बिना सेनापति के लड़ाई नहीं हो सकेगी। 'कल्ट' (गुरुपूजा–अनुवादक) की बात अथवा इस तरह की आलोचना बुर्जुआ लोग ही किया करते हैं।"

मजदूर वर्ग के सामूहिक नेतृत्व का विशिष्टकृत रूप ही व्यक्ति-नेतृत्व है

इतने साधारण ढंग की समझ लेकर चलने से पार्टी के अन्दर ऐसा झुकाव पैदा होगा जो सामूहिक नेतृत्व को कमजोर करेगा तथा सैद्धांतिक आंदोलन को भी कमजोर कर डालेगा। अगर समझदारी इसी स्तर पर रह जाती है तो क्रान्तिकारी चेतना को लगातार बढ़ाने तथा चरित्र-निर्माण के उद्देश्य से यह जो सांस्कृतिक क्रांति संगठित किया गया है इस सांस्कृतिक क्रांति के फौरी कार्यक्रम समाप्त होते ही उससे नयी अड़चनें पैदा होने लगेंगी। इसीलिये वर्तमान सांस्कृतिक क्रांति के जरिये से ही उन्हें एक बहुत जरूरी काम कर लेना चाहिए था। वह यह कि, माओ-त्से-तुंग को आम-जनता तथा राष्ट्र के लिये 'ईश्वर' बनाने के पहले कम-से-कम पार्टी के अन्दर भाववादी की ईश्वर-धारणा अथवा बुर्जुआ की व्यक्ति नेतृत्व सम्बन्धी धारणा, व्यक्तिवाद तथा अन्धता से मुक्त द्वन्द्वात्मक चिन्तन के आधार पर उन्हें इसका सही

सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत कर देना चाहिए था कि यह व्यक्ति-नेतृत्व का ही एक विशिष्ट-कृत रूप के तौर पर ऐतिहासिक जरूरत से बना है। चीन की पार्टी आज तक यह भी न कर सकी। वे लोग सारी चीज को मात्र इस रूप में देख रहे हैं कि, 'माओ-त्से-तुंग को नेता के तौर पर सारे राष्ट्र के सामने लाना जरूरी है।' और इस समझ का प्रयोग भी कर रहे हैं बहुत ही यांत्रिकतापूर्ण (mechanical) तरीके से। उनका तर्क कुछ इस किस्म का है,—"जब तक माओ-त्से-तुंग सही (right) है तबतक इसमें नुकसान ही क्या है? वे सही रहनुमा हैं और हम उन्हें मानते हुए चल रहे हैं। आखिर कोई नेता तो चाहिए ही।"

लेकिन इस प्रश्न को मात्र इस रूप में देखने से नहीं चलेगा। इसका एक दूसरा पहलू भी है जिसपर गौर करना होगा। हमारी समझ से भी आज उनके लिये माओ-त्से-तुंग के नाम का इसी तरह इस्तेमाल करना जरूरी है। यह बिल्कुल जादू का काम कर रहा है। जनता को प्रेरित करने के लिये यह एक बहुत ही मजबूत हथियार है। इसे छोड़ नहीं दिया जा सकता। हर मुल्क में क्रांति संगठित करने के सिलसिले में इसकी कम-बेश आवश्यकता पड़ती है; खासकर इसकी आवश्यकता तबतक होगी जबतक कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की सैद्धान्तिक चेतना का स्तर एक खास उन्नत सतह तक पहुँच नहीं जाता है। यह तो बिल्कुल स्पष्ट ही है कि सैद्धांतिक चेतना का वह आवश्यक स्तर क्रांति के दर्म्यान या क्रांति के बाद, यहाँ तक कि पार्टी के अन्दर भी, बनाये रखना हमेशा सम्भव नहीं होता है। रूसी क्रांति ने यह देखा है और चीनी क्रांति में भी वह देखा जा रहा है। चीन से जो सारे लेख निकल रहे हैं उनमें यह स्पष्ट दीख रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि वास्तविक जरूरत से जनता को प्रेरित करने के लिये उन्होंने जनता के सामने माओ को नेता के रूप में पेश करने का यह जो तरीका अपनाया इससे उनका तात्कालिक काम अच्छी तरह सध जायगा—यह सच है। लेकिन नेतृत्व के विकास सम्बन्धी इस सवाल को सैद्धान्तिक पहलू से

वैज्ञानिक द्वन्द्वात्मक तर्क विज्ञान के आधार पर (well reasoning) स्पष्ट तर्क एवं इतिहास से संगतिपूर्ण चर्चा द्वारा प्रतिष्ठित करने में वे लोग आज भी सक्षम नहीं हुए हैं। एक नेता के अन्दर सम्मिलित नेतृत्व का विशिष्टकृत प्रकट रूप ही सामूहिक नेतृत्व है। जब किसी नेता के माध्यम से पार्टी के सभी सदस्यों के सामूहिक चिन्तन तथा भावना धारणाओं का सर्वाङ्गीण तथा सबसे उन्नत एवं सुन्दरतम अभिव्यक्ति होती है, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कहने के लिये, मात्र तब ही पार्टी सामूहिक नेतृत्व को जन्म दे पाती है और इसे ही सामूहिक नेतृत्व का विशिष्टकृत रूप कहते हैं। इस स्तर तक सामूहिक नेतृत्व के विकास होने पर ही पार्टी के लिये सम्भव होता है कि अपने अन्दर व्यक्तिवाद के अप्रत्यक्ष प्रभाव के फलस्वरूप जब तब जो ultra democracy का झुकाव पैदा होता है उसे वह जड़ से उखाड़ फेंके एवं जनतंत्र की नाना प्रकार की बातों की आड़ में सर्वहारा-जनतंत्र की नीतियों के विरोधी सभी तरह के व्यक्तिवादी झुकावों को भी पार्टी के अन्दर वह परास्त कर सके। चीन से प्राप्त लेखों में इस सामूहिक नेतृत्व के बारे में अभी भी बहुत ही मामूली तरह की समझ के नमूने मिलते हैं। अभी भी वे लोग उस औपचारिक जनतंत्र (formal democracy) की नीति के अनुसार कमिटी के अधिकांश सदस्यों की राय को ही पार्टी का सामूहिक नेतृत्व समझते हैं। सामूहिक नेतृत्व सम्बन्धी चिन्तन तथा धारणा को वे लोग आजतक इससे अधिक उन्नत (develop) नहीं करा सके। एक ओर महान नेता के रूप में माओ-त्से-तुंग का ऐतिहासिक आविर्भाव एवं दूसरी ओर नेतृत्व के सम्बन्ध में चीनी पार्टी के ख्यालात अगर इसी स्तर पर रह जाती है तो आम कार्यकर्त्तागण ही नहीं बल्कि नेतागण भी अन्धतापूर्ण यांत्रिकवृत्ति के शिकार हो जायेंगे। जो नेता एवं सक्रिय कार्यकर्त्तागण इस आंदोलन का संचालन कर रहे हैं वे अगर एक लम्बे अर्से तक इस तरह यांत्रिक विचारधारा के शिकार बने रहेंगे तो इस महान सांस्कृतिक क्रांति के

बाद भी चीनी समाज तथा पार्टी के अन्दर गुरुवाद (authoritarianism) के सभी कुफल एक-पर-एक प्रकट होता रहेगा। इसलिये अभी से ही इस सम्बन्ध मे सचेत होना जरूरी है।

कोटेशन (उद्धरण) के व्यवहार के मामले में यांत्रिक तरीके का प्रभाव

सम्प्रति चीनी पार्टी के कार्यकर्त्ताओं और जन साधारण के बीच आमतौर पर उद्धरण (quotation) देते रहने का और खास तौर पर माओ-त्से-तुंग के उद्धरण देते रहने का एक प्रबल झुकाव पैदा हुआ है। यह सच है कि जरूरत पड़ने से तथा सच्चाई को आसानी से समझ पाने के लिये अथरिटी (authcrity) को 'कोट' (quote) करना पड़ता है। लेकिन तात्पर्य को ठीक-ठीक न समझते हुए तथा किस परिस्थिति में, किस अर्थ में किस समस्या का सामना करते हुए कौन बात कही गई थी उसे सही-सही न समझकर अपने-अपने तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति के अन्धापन के साथ 'कोटेशन' इस्तेमाल करते रहने से उसके चलते बहुत तरह की विपत्तियाँ पैदा हो सकती हैं एवं हो भी रही हैं। जैसा कि, ११वाँ प्लेनरी सेसन का जो दस्तावेज प्रकाशित किया गया है उसमें पार्टी बाडी (party body) के आधिकारिक पदों पर आसीन जो नेतागण सांस्कृतिक क्रांति का विरोध कर रहे हैं उनके खिलाफ आक्रमण करते हुए यह आरोप लगाया गया है कि वे लोग "सांस्कृतिक क्रांति में हिस्सा लेने के मामले में प्रत्येक कार्यकर्त्ता को पार्टी-बाडी का फैसला मानकर चलना होगा" ऐसा निर्देश दिये हैं। उनके इस निर्देश के विरुद्ध समालोचना करते हुए कहा गया है, "यह निर्देश कार्यकर्त्ताओं में अन्धतापूर्ण एवं गुलामी की मनोवृत्ति को बढ़ायगा क्योंकि माओ-त्से-तुंग ने कहा है, "Every communist shall use their own head" यानी पार्टी में जो भी निर्णय होगा उसे कार्यरूप देने

में "प्रत्येक कम्युनिस्ट अपने मस्तिष्क का व्यवहार करेगा।" इस तरह कहने से हो सकता है, आज पार्टी-विरोधी प्रमुख व्यक्तियों के खिलाफ लड़ाई का तात्कालिक मकसद पूरा होगा परन्तु इस तरह के तर्क देने का बुरा नतीजा भविष्य में पार्टी के अन्दरूनी जीवन के लिये खतरनाक हो सकता है। वास्तविक स्थिति के सन्दर्भ में ही 'कोटेशन' का इस्तेमाल होना चाहिये। वस्तुगत पृष्ठभूमि का विश्लेषण करके यह समझने की जरा भी कोशिश न करके कि किस मतलब से तथा कौन सी बात को स्पष्ट करने में यह 'कोटेशन' मदद करेगा, इसे पार्टी-बाडी के एक ऐसा निर्देश के खिलाफ इस्तेमाल किया गया है जो जनतांत्रिक केन्द्रीयता की नीति से केन्द्रित (democratically centralised) किसी भी कम्युनिस्ट पार्टी के लिये अवश्य अपनायी जाने वाली पद्धति है। पार्टी-बाडियों के अन्दरूनी संगठनात्मक पहलू पर कौन सी खास स्थिति पैदा होने के कारण यहाँ इस तरह के निर्देश का उल्लंघन करना ही माओ-त्से-तुंग की क्रांतिकारी लाइन लेकर चलनेवाले कम्युनिस्टों के लिये नीति-संगत स्वतंत्र चेतना तथा रुचि-संगत स्तर (ethical standard) एवंअनुशासन का प्रमाण देता है उसकी विस्तृत रूप से चर्चा कर न देखाने के फलस्वरूप भविष्य में कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं में नीति रहित स्वाधीन आचरण का झुकाव पैदा हो सकता है। चूँकि अन्धतापूर्ण अनुशासन की धारणा तोड़नी है इसलिए अपने फौरी स्वार्थों की पूर्ति हेतु नीति रहित स्वाधीन आचरण के झुकाव को बढ़ावा देना निःसन्देह मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी का तरीका या नीति नहीं हो सकती।

पार्टी के जो नेतागण संगठनात्मक महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं, अगर वे अपने पदाधिकार से फायदा उठाकर पार्टी की क्रांतिकारी राजनैतिक लाईन के आधार पर संगठित सांस्कृतिक क्रांति को बर्बाद करने के नापाक इरादे से पार्टी-डिसिप्लिन की इस नीति का इस्तेमाल करते हैं तो उस हालत में उनके खिलाफ कठोरतापूर्वक लड़ाई चलानी पड़ेगी।

डिसिप्लिन तथा पार्टी के प्रति वफादारी के वसूल के बारे में सही समझदारी पैदा करने के लिये वास्तविक स्थिति के सन्दर्भ में ही माओ-त्से-तुंग के इस उद्धरण (quotation) का प्रयोग करना सार्थक है। जहाँ किसी पार्टी-नेतृत्व के खिलाफ कोई लड़ाई बुनियादी चरित्र की है एवं उस लड़ाई को पार्टी के सर्वोच्च नेतृत्व ने ही चालू किया या चलाये जाने की सम्मति दी वहाँ पार्टी के महत्वपूर्ण पद पर होने का फायदा उठा कर 'पार्टी-बाडी' का निर्देश मानकर चलना होगा, इस तर्क से जो नेता संग्राम को खत्म करना चाहते हैं वे वस्तुतः नेतृत्व के निहित स्वार्थ एवं कार्यकर्त्ताओं में अन्धता तथा गुलामी की मनोवृत्ति को ही बनाये रखने की कोशश कर रहे हैं। इस परिप्रेक्षित में माओ-त्से-तुंग के उक्त 'कोटेशन' का इस्तेमाल करने से हमारे लिये आलोचना की कोई बात नहीं होती। लेकिन जिस तरह से इसका इस्तेमाल किया गया है वह बेशक यांत्रिकता-दोष से दूषित है। भले ही आज इस तरह से कहने की सुविधा उन्हें प्राप्त है। परन्तु इसी रूप में इसे समझाने से भविष्य में विरोधी तत्व फिर एक ही तरह के तर्क द्वारा जनता को नेतृत्व के खिलाफ इस्तेमाल कर सकता है। अतः यह खतरनाक है। सांस्कृतिक क्रांति के जरिये विरोधी तत्वों के खिलाफ आज यह जो तीव्र संघर्ष चलाया जा रहा है, आखिरकार इसका उद्‌देश्य क्या है? इसका उद्‌देश्य है, अन्त तक पंचानवे फी सदी पार्टी-सदस्यों एवं आम जनता के बीच पूरी एका एवं चिन्तन की एकरूपता (uniformity of thinking) कायम करना। इसका मतलब है, आखिरतक लोग पुनः केन्द्रीयता (centralism) को ही कायम करना और मजबूत बनाना चाह रहे हैं। पार्टी के अन्दर एवं पार्टी और जनता के बीच और भी उन्नत centralism लाने के लिये ही इस तरह के विचित्र, व्यापक तथा पेचीदा लड़ाई उन्होंने शुरू की है। इसीलिये मात्र तात्कालिक सुविधा का ख्याल करते हुए कोई भी आचरण करना ठीक नहीं होगा।

उदाहरण के लिये माओ-त्से-तुंग की एक और बात को लिया जाय। उन्होंने कहा, "नागरिक लोग जानेंगे और सैनिक लोग जानेंगे एवं कार्य करेंगे।" यानी नागरिकों को सिर्फ जानने से ही काम चलेगा पर सैनिक वे हैं जो जानते हैं तथा साथ-साथ कार्य या क्रिया करते हैं। बात कोई नई नहीं है परन्तु कितने सुन्दर ढंग से उन्होंने इसे कहा! नागरिकों यानी आम लोगों को क्रांति के सिद्धान्त एवं क्रांतिकारी आन्दोलन के बारे में कम-से-कम मोटा-मोटी तरह की जानकारी भी होनी चाहिए। आन्दोलन में सभी लोग सक्रिय पार्ट अदा नहीं करते किन्तु क्रांति के सिद्धान्त की मोटा मोटी जानकारी रहने से नागरिक लोग क्रांति के परोक्ष (Passive) समर्थक बन सकते हैं। वे लोग केवल जानते हैं और ऊपरी तौर पर मोटामोटी ढंग से समझते भी हैं—सक्रिय नहीं होते हैं। लेकिन चूँकि उनकी इस मोटा-मोटी समझ में भी एक तरह की क्रियाशीलता निहित रहती है इसलिये वे क्रांति के परोक्ष (Passive) समर्थक में परिणत होते हैं। दूसरे लोग जो आंदोलन में सक्रिय हिस्सा लेते हैं उन्हें माओ-त्से-तुंग ने सैनिक की संज्ञा दी। उनकी जानकारी इस तरह की होनी चाहिये ताकि वे सिद्धान्त को अमल में लाने में सक्षम हों। यहाँ 'जानना' शब्द वास्तविक ज्ञान के तात्पर्य से कहा गया है। इसके द्वारा जानकारी के दो सुस्पष्ट स्तर को सुन्दर रूप से व्यक्त किया गया है। एक मामूली तरह से ऊपर-ऊपर से जानना, दूसरा यथार्थ ज्ञान हासिल करने के तात्पर्य से जानना। लेकिन सही मानी या तात्पर्य न समझते हुए अन्धतापूर्वक 'कोट' करने की बुरी आदत रहने के कारण बहुत लोग इसका यह अर्थ करने लगते हैं कि लड़ाई में सक्रिय रूप से शामिल हुए बिना ही सिद्धान्त को सही सही जाना जा सकता है। क्योंकि, माओ-त्से-तुंग ने कहा कि नागरिक लोग जानेंगे और सैनिक जानेंगे तथा कार्य करेंगे। अतः संग्राम में भाग न लेकर एवं कार्य न करके भी तो वे जान ही सकते हैं। फलस्वरूप बहुतों को ऐसा सोचते पाया जाता है कि संग्राम के साथ प्रत्यक्ष

रूप से शामिल न होते हुए यानी सैनिक न होते हुए भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी हैं। ये सज्जन लोग बगैर लड़ाई के ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद के जानकर बनकर सच्चे सैनिक अर्थात् कार्यकर्त्ताओं के माथे पर आसीन होकर लगातार उनके माथे चाटते रहेंगे। इस तरह यह साफ है कि इतनी अच्छी बात को भी ठीक-ठीक नहीं समझ पाने से उसके चलते इतनी दिक्कतें और विपत्तियाँ पैदा हो सकती हैं जिसका कोई हद नहीं। इसीलिये प्रसंग (context) से अलग करके इन बातों को कहने से या समझाने से काम नहीं चलेगा। ये बातें अपने-अपने परिप्रेक्षित में बहुत ही संगत तथा कारगर हैं एवं सही जगह सही ढंग से रख पाने से फल भी अच्छा ही होगा। एक जगह एक खास स्थिति में जो बात 'सचचाई' को प्रकट करती है दूसरी जगह दूसरी खास स्थिति में वही बात वास्तविक सत्यता को जाहिर करेगी यह जरूरी नहीं है।

समाजवादी व्यवस्था में नई तरह के व्यक्तिवाद के विरुद्ध सैद्धान्तिक संग्राम चलाने की अक्षमता

सांस्कृतिक क्रान्ति के अन्दर सैद्धान्तिक संग्राम के क्षेत्र में एक और कमजोरी देखी गयी है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस कमजोरी को अगर दूर नहीं किया जा सका तो सामाजिक जीवन से जिस संशोधनवाद के बीज को वे जड़ से उखाड़ फेकना चाह रहे हैं, सांस्कृतिक क्रान्ति के फौरी कार्यों के समाप्त होने के बाद भी पुनः उस संशोधनवाद की प्रवृत्ति की शंका रह ही जायगी। सांस्कृतिक क्रान्ति के जरिये वे लोग पुराने समाज के चिन्तनों एवं बुर्जुआ विचारधारा तथा व्यक्तिवाद के प्रभाव को खत्म कर सर्वहारा (proletariat) की क्रांतिकारी राजनीति की विजय का झंडा फहराना चाह रहे हैं। बुर्जुआ तथा

पुरानी प्रतिक्रियावादी संस्कृति का जो प्रभाव सामाजिक जीवन में आज भी है उसके खिलाफ वे लड़ाई चला रहे हैं लेकिन आज तक वे लोग सर्वहारा संस्कृति (Proletarian Culture) की रूपरेखा का कोई सम्पूर्ण चित्र जनता के सामने प्रस्तुत नहीं कर सके। बुर्जुआ मानवतावादी संस्कृति की नैतिकता एवं मूल्यबोध (sense of value) के साथ सर्वहारा संस्कृति की नैतिकता तथा मूल्यबोध का बुनियादी अन्तर क्या है इसके सम्बन्ध में इतिहास से संगतिपूर्ण कोई सिद्धान्त का आज तक वे लोग विकास नहीं करा सके। यह सच है कि बुर्जुआ मानवतावाद के विरुद्ध सर्वहारा मानवतावाद की बात कही जा रही है। परन्तु जरा-सा गौर करने से ही यह पता चल जायगा कि उनका यह संग्राम मूलतः केवल बुर्जुआ मानवतावादी आदर्श तथा राजनैतिक विचारधारा के विरुद्ध संचालित हो रहा है लेकिन जीवन सम्बन्धी मूल्य-बोध तथा नैतिकता की धारणा के विषय में मानवतावादी धारणाओं के विरुद्ध सर्वहारा संस्कृति के नये मूल्यबोध तथा नैतिकता को वे लोग आज भी कायम नहीं कर सके। फलस्वरूप चीनी समाज की वर्तमान अवस्था के इस स्तर पर सैद्धान्तिक संग्राम के क्षेत्र में वे लोग जो सारे सिद्धान्त तथा वक्तव्य रख रहे हैं वे चीनी सामाजिक जीवन से व्यक्तिवाद के प्रभाव को दूर करने के लिये काफी नहीं है। आज चीनी समाज जिस समस्या का सामना कर रहा है उसका एक नया पहलू है। वह यह कि समाजवादी सामाजिक व्यवस्था आर्थिक एवं राजनैतिक पहलुओं से तुलनात्मक रूप से स्थायित्व प्राप्त करने के साथ-साथ व्यक्ति स्वाधीनता (Individual liberty), व्यक्ति की मुक्ति तथा स्वातन्त्र्य की ख्यालात सुविधा (Privilege) में परिणत होने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। इसे ही हमने पहले (Socialist Individualism) यानी समाजवादी समाज-व्यवस्था में नये ढंग की व्यक्तिगत अवसरवाद की संज्ञा दी है।

इसीलिये सिर्फ पुराने सिद्धान्तों को दुहराने से इसका (नये व्यक्तिवाद का—अनुवादक) प्रभाव खत्म होने को नहीं है। आज जो हालत चल रही है इसके बाद समाज में पुनः एक सापेक्ष स्थायित्व आयेगा। इस तरह के प्रत्येक स्थायित्व-काल (Period of Stability) में ही यह नये ढंग का व्यक्तिवाद का जड़ जमता जायगा एवं पार्टी तथा नेतृत्व पर उसका असर पड़ना भी अनिवार्य है। आज तक भी चीन की पार्टी जिस आदर्श के आह्वान से जनता को जगा रही है, प्रेरित कर रही है वह मूलतः बुर्जुआ मानवतावादी मूल्य-बोध पर आधारित त्याग का ही आदर्श है। कहने का तात्पर्य यह है कि, 'समाज के प्रति कर्त्तव्य, सामाजिक स्वार्थ तथा क्रांति के स्वार्थ के सामने व्यक्ति के स्वार्थ को सरेन्डर (Surrender) करना होगा, इस वक्तव्य में बुर्जुआ मानवतावादी मूल्य-बोध की ही ध्वनि है। जनता को जगाने तथा प्रेरित करने के लिये इससे उन्नत कोई न्याय-नीति की धारणा, प्रोलेटरीयन न्याय-नीति तथा मूल्य-बोध का इससे उन्नत कोई हथियार आज भी उनके हाथ नहीं है। न्याय-नीति एवं मूल्य-बोध की वह पुरानी धारणा एवं माओ-त्से-तुंग की पुरानी बातों के द्वारा ही आज भी वे लोग जनता को परिचालित करने की कोशिश कर रहे हैं। चीनी क्रांति संघटित होने के पहले वर्ग-संघर्ष का जो रूप तथा उसकी जो समस्याएँ थीं एवं क्रांति के पश्चात् चीनी समाज की वर्त्तमान समस्याओं में से बहुत-सारी चीजों का असर माओ-त्से-तुंग के लेखों में हैं। फलस्वरूप आज जो लोग वियतनाम के जंगलों में लड़ रहे हैं उन्हें अथवा वर्ग संघर्ष के जिस स्तर में हमलोग अभी हैं इसमें हमारे देश के जनसाधारण को माओ-त्से-तुंग के उन पुराने लेखों से भी बहुत दूर तक मदद मिल सकती है। परन्तु तुलनात्मक रूप से और भी उन्नत आर्थिक एवं औद्योगिक स्तर पर रहनेवाले, समाजवादी समाज-व्यवस्था की नयी पीढ़ी (जेनरेशन) के कम्युनिस्टों के लिये माओ-त्से-तुंग के उन सभी वक्तव्यों के तात्पर्य एवं प्रभाव पूरी तरह ठीक उतना ही नहीं

हो सकता। उनके उन पुराने वक्तव्यों का एक बड़ा अंश ही आज थोड़े हद तक (Obsolete या exhausted) हो चुका है। ऐसी हालत में आज चीन की समाजवादी समाज-व्यवस्था में नयी प्रोलेटेरीयन न्याय-नीति की धारणा तथा संस्कृति की मूलभूत बात क्या होगी तथा वक्तव्य क्या रहेगा यह बताने की जरूरत है; बुर्जुआ जनतान्त्रिक देशों में, जहाँ व्यक्ति स्वातन्त्र्य की धारणा (Sense of Individual Freedom) एक Privilege में परिणत हो गयी हो, उन सब मुल्कों में कम्युनिस्ट तथा प्रगतिशील व्यक्तियों को क्रांतिकारी चेतना से प्रेरित करने में बुर्जुआ मानवतावादी मूल्य-बोध (Burgeois Humanitarian sense of value) की सीमाबद्धता एवं कहीं-कहीं उसकी प्रतिक्रियावादी भूमिका दिखा देना होगा और सर्वहारा वर्ग के नये मूल्य-बोध की धारणा क्या होगी उसे भी जनसाधारण तथा कम्युनिस्टों के सामने रखना होगा।

आज की जटिल परिस्थिति में कम्युनिस्ट मूल्यबोध के पुराने स्टैन्डर्ड से काम चलने को नहीं

'व्यक्ति-स्वार्थ को सामाजिक स्वार्थ से मेल कराते हुए चलना होगा, सामाजिक स्वार्थ के सामने व्यक्ति-स्वार्थ को सरेन्डर करना होगा'—यह मूलतः बुर्जुआ मानवतावादी चेतना है। और 'जो लोग सामाजिक स्वार्थ के सामने व्यक्तिगत स्वार्थ को बिना शर्त विसर्जित कर सकते हैं, हमेशा पार्टी एवं क्रांति के स्वार्थ को ही बड़ा मानते हैं एवं उसके लिये व्यक्तिगत स्वार्थ को बिना शर्त तिलांजलि दे सकते हैं वे ही सच्चे कम्युनिस्ट हैं'—आज तक कम्युनिस्ट मूल्य-बोध का यही था सर्वोच्च स्तर। कॉलिनिन की किताब Communist Education में इसी

को सच्चे कम्युनिस्ट की चेतना का उच्चतर स्तर कहा गया है। How to be a good Communist किताब में भी (यद्यपि हाल में इस किताब के खिलाफ काफी समालोचना की गयी है परन्तु यह किताब चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमिटी द्वारा अनुमोदित थी एवं एक समय बहुत सराहनीय डकुमेन्ट मानी जाती थी) इसी को सच्चे कम्युनिस्ट का स्टैण्डर्ड माना गया है। लेकिन आज की नयी परिस्थिति में इसे कतई सच्चे कम्युनिस्ट के ऊँचे स्तर की चेतना नहीं मानी जा सकती। क्योंकि पूँजीवादी-शोषण की इस समाज-व्यवस्था में आज व्यक्ति-स्वाधीनता तथा स्वातन्त्र्य की भावना व्यापक तौर पर अवसरवाद में परिणत होती जा रही है एवं सामाजिक समस्याओं की ओर व्यक्ति की उदासीनता का मनोभाव (indifferent attitude towards social problems) दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। समाजवादी समाज-व्यवस्था में अधिकार की समता (Right of equality) बुर्जुआ तात्पर्य से, सचमुच कायम हो जाने से व्यक्ति-स्वाधीनता तथा स्वातंत्र्य की भावना भी बुर्जुआ एवं सामंती पीड़न (repression) से पूरी तरह मुक्ति पायी है एवं 'व्यक्ति' बुर्जुआ समाज की तुलना में लगातार अधिक-से-अधिक स्वातंत्रता एवं अवसर का उपभोग कर रहा है। लेकिन, चूँकि राजसत्ता टिका हुआ है इसलिये व्यक्ति की मुक्ति का संग्राम एक नया रूप लेकर चल रहा है। इस नये ऐतिहासिक दौर में व्यक्ति के मुक्ति संग्राम के सामने आज मूल समस्याएँ कौन-कौन सी हैं उनके बारे में सैद्धान्तिक तथा इतिहास से संगतिपूर्ण सही तथा स्पष्ट धारणा बना नहीं पाने से समाजवाद में निरन्तर सुविधाओं का उपभोग करने के फलस्वरूप कम्युनिस्टों में भी व्यक्ति-स्वाधीनता तथा स्वातंत्र्य की भावना धीरे-धीरे privilege का ख्यालात पैदा कर डालेगा। इसीलिये समाजवादी समाज में व्यक्ति की मुक्ति के संग्राम के सामने आज जो नयी समस्याएँ हैं उनपर रोशनी डालनी होगी।

जबतक समाज समाजवादी व्यक्तिवाद के प्रभाव से मुक्त नहीं हो जायगा तब तक राजसत्ता लुप्त नहीं होगा

व्यक्ति-स्वार्थ के साथ सामाजिक स्वार्थ का जो द्वन्द्व है उसका स्वरूप विरोधात्मक है। उत्पादन से सम्बन्धित दूसरी समस्याओं के समाधान हो जाने के बाद भी जब तक इस विरोधात्मक द्वन्द्व का अस्तित्व रहेगा, जबतक राजसत्ता मुर्झा (wither away) नहीं जायगा याना राजसत्ता का खात्मा नहीं होगा, राजसत्ता, चाहे वह समाजवादी राजसत्ता ही क्यों न हो, पीड़न का हथियार (Instrument of coercion) है। बुर्जुआ राजसत्ता के साथ समाजवादी राजसत्ता का अन्तर यही है कि जहाँ बुर्जुआ राजसत्ता सैकड़े एक हिस्से लोगों के स्वार्थ में सैकड़े निनानवे हिस्से लोगों की स्वाधोनता के गला घोटने का (coercive instrument) है वहाँ समाजवादी राजसत्ता सैकड़े निनान्वे हिस्से लोगों के स्वार्थ में सैकड़े एक हिस्से लोगों के समाजवाद विरोधी प्रतिक्रियावादी कार्यकलाप की स्वाधीनता के गला घोटने का coercive instrument है। इसीलिये व्यक्ति स्वार्थ और सामाजिक स्वार्थ के बीच विरोधात्मक द्वन्द्व के द्योतक के रूप में राजसत्ता का अस्तित्व जबतक बरकरार रहेगा तब तक समाजवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति को सामाजिक स्वार्थ के सामने आत्मसमर्पित (submit) करना होगा एवं तबतक समाजवादी राजसत्ता के दमनात्मक चरित्र (repressive character) के विरुद्ध व्यक्ति-मानस में विद्रोह की प्रवृत्ति बारंबार सर उठाने की भी कोशिश करती रगी जिससे सामाजिक लक्ष्य की पूर्ति में बाधाएँ आती रहेंगी। बार-बार व्यक्ति विद्रोह करेंगे, उनमें सामाजिक दायित्व के प्रति उदासीनता देखी जायगी। फलस्वरूप या तो कम्युनिस्ट आदर्श का असर, लगन(dedication)

कम होता जायगा अथवा liberalisation यानी उदारवाद का झुकाव बढ़ता जायगा। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति के अधिकार बढ़ाने की मांग निरन्तर होती रहेगी। और ये सब चलते रहने से पुनः संशोधनवाद का जन्म होगा जो पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के प्रयास का सहायक होगा।

समस्या को इस रूप में समझना होगा कि समाजवाद में 'अधिकार' किसी से प्राप्त करने की बात नहीं है—आजादी और हक किसी वर्ग के विरुद्ध लड़कर हासिल करने का सवाल नहीं है। समाजवादी व्यवस्था में राजसत्ता द्वारा जो थोड़ा बहुत पीड़न (oppression) होता है वह मूलतः इसलिये कि समाजवादी व्यवस्था के विकास के साथ-साथ व्यक्ति की स्वाधीनता की वृद्धि और पूरी तरह मुक्ति हासिल करने के मार्ग पर किसी किसी व्यक्ति के आत्मकेन्द्री नीच आचरण से उत्पन्न होनेवाली जिच को तोड़ने के लिये ही उसकी (ऐसे पीड़न की) आवश्यकता होती है। समस्या यह नहीं होती है कि कोई शोषक वर्ग व्यक्ति का शोषण करने के लिये उसपर पीड़न करता हो। वस्तुतः व्यक्ति-स्वातंत्र्य सम्बन्धीपुराना संस्कार और मानसिक बनावट ही समाजवादी व्यवस्था के नये वातावरण में नये तरीके से स्वाधीनता संग्राम के संचालन के क्षेत्र में रुकावट डालता है। वह पुराना मानसिक बनावट सामाजिक जरूरत के साथ व्यक्ति की जरूरत का विलयन (merger) होने नहीं देता है। व्यक्ति की वास्तविक मुक्ति के मार्ग पर आज यही सबसे जबर्दस्त रोड़ा है। अगर यह रोड़ा हटाया नहीं जा सका तो आर्थिक क्षेत्र में वर्ग के मिटाये जाने के बावजूद इस व्यक्तिवाद के ही चलते राजसत्ता (wither away) मिट नहीं सकेगी। फलतः व्यक्ति को मुक्ति भी नहीं मिल सकेगी। क्योंकि, राजसत्ता रहने ही से उसका दमनात्मक चरित्र भी रहेगा।

●

व्यक्ति-स्वार्थ का सामाजिक स्वार्थ से विलयन कर पाने से ही व्यक्ति की वास्तविक मुक्ति हासिल होगी

इसलिये समाजवादी क्रांति की पूर्ण विजय के लिये संग्राम चलाते हुए उसके अन्दर व्यक्ति की स्वाधीनता हासिल करने की लड़ाई को मूलतः इस लक्ष्य की ओर संचालित करना होगा कि व्यक्ति की आवश्यकता के साथ सामाजिक आवश्यकता के द्वन्द्व का यों जो विरोधात्मक (antagonistic) चरित्र रहता है उसे मिलनात्मक (non-antagonistic) में बदल डालना है। सांस्कृतिक क्रांति के जरिये इस लड़ाई में कामयाबी हासिल कर पाने से तब ही व्यक्ति की मांग एवं आशा-अकांक्षाओं का बुनियादी गुणात्मक परिवर्त्तन होगा। समाजवादी व्यवस्था में सांस्कृतिक क्रांति द्वारा उस स्तर तक पहुँचने के बाद ही राजसत्ता wither away कर सकती है—उससे पहले नहीं। वस्तुतः केवल तब ही व्यक्ति हर तरह के सामाजिक पीड़न (social coercion) से मुक्त होगा।

इस तरह यह जाहिर है कि समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति की मुक्ति का संग्राम एक नया जटिलतापूर्ण स्तर पर आ पहुँचा है जहाँ इस समस्या के समाधान के लिये निरन्तर साधन और संग्राम के जरिये सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्ति-स्वार्थ के विलयन के लिये अधिकतर कठोर तथा जोरदार संग्राम की जरूरत है। न्याय नीति और मूल्य बोध का यह एक नया स्तर होगा जो पुराना बुर्जुआ मानवतावाद, जिससे आजतक कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं को क्रांति में प्रेरित किया जाता रहा है, से सम्पूर्ण भिन्न है। आजतक प्रोलेटेरीयन क्रांतिकारी राजनीति में नैतिकता का जो स्टैण्डर्ड काम करता आया वह यह है कि 'सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्ति-स्वार्थ का सामंजस्य करके चलना होगा।' लेकिन

वर्त्तमान नयी परिस्थिति में भी चेतना का स्टैण्डर्ड अगर यही रहा तो Complete dedication सम्भव नहीं होगा। व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति को रोकना भी नामुमकिन रहेगा। कम्युनिस्ट नैतिकता का स्टैण्डर्ड अगर इसी स्तर पर रह गया तो सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति तथा प्रोलेटेरियन राजनीति का लगातार क्रांतिकारी विकास की सारी बड़ी-बड़ी बातों के बावजूद समाज में व्यक्तिवादी झुकाव रह ही जायगा।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट समझा जा सकेगा कि कितनी बारीकी से तथा किस प्रकार नये-नये रूप में पुरानी बुर्जुआ विचारधाराएँ समाज के अन्दर कार्य करती जाती हैं। चीन के नेतागण व्यक्तिवाद के विरुद्ध संग्राम करते हुए मूल समस्या को समझने में मेरे समझ से बहुत दूर तक आगे बढ़े हैं। परन्तु मैंने ऊपर जिस खास समस्या की चर्चा की है उसे आजतक वे लोग सैद्धान्तिक आधार पर स्पष्ट करके नहीं रख सके।

सैद्धान्तिक खामी दूर नहीं कर पाने से चीनी समाज भविष्य में संशोधनवाद के खतरे से बचा नहीं रहेगा।

इस विषय को सबसे पहले Conception में सैद्धान्तिक आधार पर ठोस बनाना पड़ेगा और तब इसके आधार पर देश-व्यापी नैतिकता का एक आन्दोलन पैदा करना होगा। लेकिन चीन की मौजूदा सांस्कृतिक क्रांति अभी तक भी इस समस्या को इस रूप में take up करने में सक्षम नहीं हुई। इस सांस्कृतिक क्रांति का उद्देश्य उस व्यक्तिवाद के विरुद्ध संग्राम करना, उसे मिटाना है जो व्यक्तिवाद नेता एवं कार्यकर्त्ताओं को पूँजीवादी रास्ते में ले जा रहा है, बुर्जुआ विचारधारा का शिकार बना रहा है। जो लोग ब्युरोक्राटिक आचरण कर रहे हैं, जिनमें अर्थवाद का झुकाव पैदा हो रहा है, जो संशोधनवादी

दृष्टिकोण लेकर चल रहे हैं, जो लोग सेना में सर्वहारा की राजनैतिक चेतना के आधार पर एकता के बदले शस्त्रास्त्रों के आधुनिकीकरण पर ज्यादा जोर देते हैं इनके खिलाफ संघर्ष करना, उन्हें समाप्त करना इस सांस्कृतिक क्रांति का उद्देश्य है। जनता को इन सबसे मुक्त करते हुए चीन की वर्त्तमान समस्याओं के समाधान हेतु, तथा सारी विरोधी शक्तियों के खिलाफ चीनी जनता के लिये 'एक व्यक्ति' की तरह खड़ा होने का अनुकूल वातावरण पैदा करना इस सांस्कृतिक क्रांति का उद्देश्य रहा है। इन कार्यों को कर पाने से ही तत्काल के लिये सांस्कृतिक क्रांति के उद्देश्यों की पूर्ति होगी। लेकिन भविष्य में पार्टी के अन्दर पुनः संशोधनवाद के लिये सर उठाने के खतरे को खत्म करना मौजूदा सांस्कृतिक क्रांति के कार्यक्रम द्वारा सम्भव नहीं होगा क्योंकि वे लोग आजतक इस मूल बात को ही ठीक-ठीक समझ नहीं पाये। कम-से-कम पार्टी के अन्दर कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं को सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सजग करने, प्रेरित करने के लिये इस मूल सैद्धान्तिक मसले को वे लोग सांस्कृतिक आन्दोलन के आधारभूत केन्द्र-बिन्दु के रूप में संयोजित नहीं कर सके। उपरोक्त विचार के आधार पर देश-व्यापी संग्राम तथा नैतिक जागरण के आन्दोलन पैदा कर पाने से ही उसके जरिये यह चेतना आ सकती है कि मात्र इस मार्ग से ही व्यक्ति की यथार्थ मुक्ति हो सकती है। मौजूदा सांस्कृतिक क्रांति की यही एक बुनियादी कमजोरी है।

अगर यह कमजोरी रह गयी तो सांस्कृतिक क्रांति के सामने फिलहाल जो समस्या है वह दूर होगी तथा सांस्कृतिक क्रांति के प्रत्यक्ष उद्देश्यों की भी पूर्ति हो जायगी। परन्तु साथ ही साथ सांस्कृतिक क्रांति बहुत सी नयी समस्याएँ भी पैदा कर देगी। जैसा कि नेतृत्व के सम्बन्ध में यांत्रिकतापूर्ण धारणा—यह रह ही जायगी। दूसरी बात है व्यक्तिवादी झुकाव के सम्बन्ध में। इसके कारणों को सिद्धान्त के आधार पर, दर्शन के पहलू से उनलोगों ने नहीं समझा। यह व्यक्ति-

वाद यानी समाजवाद में जो व्यक्तिवादी झुकाव देखा जायगा उसका स्वरूप क्या है तथा उसे किस प्रकार दूर किया जा सकेगा इस सम्बन्ध में बुनियादी बातों को उनलोगों ने Pin point करके नहीं रखा और उस विश्लेषण के आधार पर उन्होंने नेता से लेकर कार्य-कर्त्ता तक व्यापक संग्राम का संचालन नहीं किया। इसका नतीजा यह होगा कि इस महान सांस्कृतिक क्रांति के समाप्त हो जाने के बाद भी नयी पीढ़ी के लोग फिर नये किस्म के व्यक्तिवाद के फन्दे में फँसेंगे एवं नये ढंग के संशोधनवाद के शिकार बन जायेंगे। अगर इसी बीच चीन की कम्युनिस्ट पार्टी इस स्वामित्व को न समझ पायी अथवा कोई उसे यह न समझा दिया एवं सांस्कृतिक क्रांति के कार्यक्रम के अन्दर वह इस सैद्धान्तिक मसले को भी जोड़ नहीं लिया तो।

पार्टी द्वारा प्रकाशित दूसरी किताबें—

1. पार्टी और उसका संगठन (हिन्दी)
2. श्रमिक आंदोलन में क्रांतिकारी दृष्टिकोण क्या हो (हिन्दी)
3. मार्क्सवाद की कसौटी पर भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (हिन्दी)
4. युद्ध और शांति, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति तथा पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण के बारे में (हिन्दी)
5. तिब्बत की घटना के बारे में (हिन्दी)
6. National and International Situation.
7. Gandhism and Social Democracy unmasked.
8. Communist Party of India X-Rayed.
9. Philosophical Fight in the Peace Movement
10. An Appeal to the leaders of International Communist Movement
11. On steps taken against Stalin by C. P. S. U.
12. भूमि-समस्या और नक्सलबाड़ी का किसान विक्षोभ (बंगला)
13. १५ अगस्त : गण-मुक्ति संकल्प दिवस (बंगला)

●

तरुण भारत प्रेस, पटना—४ से मुद्रित तथा कॉ० अमर कुमार पांडेय द्वारा सुहास कानन, बोरिंग रोड, पटना—१ से सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर बिहार राज्य शाखा के लिए प्रकाशित।